आर्य्यभटीयम्

ज्योतिःशास्त्रम् ।

परमेश्वराचार्य्यकृतटीकयासमलङ्कृतम्

क्षत्रियकुमारेण श्रीमदुदयनारायणवर्मणा
नागरीभाषयाऽनुवादितम्

तत्र

मधुरापुरस्थ-शास्त्रप्रकाश-कार्य्यालये
(डा० विदूपुर, मुजफ्फरपुर)
नाम्निस्थाने प्रकाशितम्

संवत् १९६३ सन् १९०६ ई०

THE

ARYA BHATIYA

or

ANCIENT SANSKRIT ASTRONOMICAL WORK

by

Arya Bhata with a sanskrit commentary
of Prameshwaracharya translated into
Nagari and published
by
Udaya Narain singh at shastra Publishing office
Madhurapur, Bidhupur, Mozaffarpur.

Printed at Brahma Press Etawah.

मूल्य १)

शरदश्रप्रमादतोदृतम्

ओ३म्

समर्पणम्

श्रीयुत मान्यवर क्षत्रियवंशावतंस परमोदार सनातन आर्यधर्म्मरक्षक श्रीमहाराजाधिराज सर नाहर सिंह बहादुर शाहपुराधीशोऽखिल-उदयनारायणसिंहस्य कोटिशोनतय स्स्फुरन्तुतराम्

प्रभो !

आप ने सनातनआर्य्यधर्म्म की उन्नति करके हम भारत वासियों का परम उपकार किया है। ईश्वर श्रीमान् जैसे धर्म्मरक्षक, दानशील, आदर्शपुरुष और आर्य्यग्रन्थों के उन्नायक महाराजों की प्रतिदिन संख्या बढ़ावे।

श्रीमान् की रुचि स० आ० ध० की ओर देख कर मैंने वेद के छः अङ्गों में से नेत्ररूपी वेदाङ्ग ज्योतिष के-उस अपूर्व ग्रन्थ का भाषानुवाद कियाहै जिस में आज १४०० वर्ष पूर्व ही से पृथिवी-भ्रमण-सिद्ध रक्खा है।

यह आर्यभटीय या आर्यसिद्धान्त ग्रन्थ संस्कृत टीका सहित जर्म्मन देश में छपा था-आज तक भारत वर्ष में इस की ओर किसी का ध्यान नहीं गया था मैं ने बड़े परिश्रम से इसे जर्म्मन देशान्तर्गत लिपजिक् स्थान से मंगवा कर सटीक सानुवाद एवं विस्तृत भूमिका सहित छपवाया है।

इस सटीक सानुवाद वेदाङ्ग ज्योतिष ग्रन्थ को मुद्रित करा श्रीमानों के कर कमलों में विनयपूर्वक अर्पण कर आशा करता हूं कि श्रीमान् इस को स्वीकार कर मुझे अन्याय आर्षग्रन्थों के सानुवाद प्रकाशित करने में उत्साहित करेंगे।

शास्त्रप्रकाश-कार्यालय
ग्राम-मधुरापुर, विद्दूपुर
ज़ि० मुज़फ़्फ़रपुर

[illegible]——
क्षत्रिय कुमार—
उदयनारायणसिंह

समुद्र–मन्थन ।

"ऋषीणां भारतीभाति सरला–गहनान्तरा ।
धीरास्तत्त्व मृच्छन्ति मुह्यन्ति प्राकृता जनाः" ॥

भाः–अर्थात् प्राचीन ग्रन्थों की वाक्य–शैली ऊपर से तो बहुत सर माालूम होती है परन्तु उन के आशय बहुत कठिन हुआ करते जिन । विद्वान् लोग तो समझ लेते पर प्राकृत पुरुष मुग्ध होकर अर्थ का अन करने लगते हैं ॥

समुद्र–मन्थन उपाख्यान महाभारत के आदि पर्व में १७–से १९ अध्याय में इस प्रकार वर्णित है किः–

एक समय महात्मा देवगण सुमेरु पर्वत के ऊपर एकत्र होकर अमृ प्राप्ति के लिये परस्पर विचार करने लगे । इसी अवसर में परम देव नार यण आकर बोले " हे पितामह! देवगण और असुरगण मिलकर समुद्र मथ नें प्रवृत्त हों । इस के अनुसार देव और असुर गण मन्थन–दण्ड के योग मन्दर पर्वत को उखाड़ने लगे, परन्तु वे कृत कार्य्य न हो सके । इस के बा परम देव नारायण की आज्ञानुसार अनन्त देव ने मन्दर पर्वत को जड़ उखाड़ा और देवगण मन्दर पर्वत को लेकर समुद्र के तीर पर आये । अमृ पाने की आशा में समुद्र, अपने मन्थन में सम्मत हुआ–और कूर्मर राज मन्दर पर्वत को अपने ऊपर धारण करना स्वीकार किया ॥

देव राज इन्द्र, कूर्म के पीठ पर 'मन्दर' रखा कर मन्थन रज्जु (म थने की डोरी) वासुकी (सर्प) द्वारा मन्दर को बांधकर समुद्र मन्थन प्रवृत्त हुए । असुरों ने वासुकी के गले के उपरले भाग को पकड़ा । और देवगण ने पुच्छ की ओर पकड़ा । विलोड़न करते २ मन्दर पर्वत पर बड़े २ वृक्षों और औषधियों के निर्यास और रस समुद्र जल में निपति होने लगा और अमृत के तुल्य रस स्रोत में देवताओं का शरीर आप्लु होने लगा, देवगण अमर हुए । अपूर्व रस से मिश्रित हो समुद्र का जल दूध हो गया और दूध से घृत उत्पन्न हुआ ।

समुद्र मन्थन में पहिले दूध से चन्द्रमा उत्पन्न हुए और घृत से लक्ष्मीदेवी सुरादेवी, श्वेत अश्व नामक घोड़ा और उत्पन्न नारायण कौस्तुभ मणि उत्पन्न हुए । कौस्तुभ मणि परम देव नारायण ने अपने वक्ष में धारण किया।

पारिजात और सुरभि उत्पन्न हुयीं। लक्ष्मी, सोम, सुरा और उच्चैःश्रवा आदित्य मार्ग में देवताओं के निकट गये द्रुत वे। अनन्तर धन्वन्तरि अमृत से भरे श्वेतकमण्डलु हाथ में लिये ऊपर हुए। और दान्त में चारों वेद से विभूषित 'ऐरावत' हाथी निकला। देवराज ने ऐरावत को लिया। अन्त में कालकूट विष उत्पन्न हुआ। हलाहल विष के गन्ध से तीनों लोक मोहित हुआ। ब्रह्मा की आज्ञा से महादेव ने इस विषपान कर लिया। तब से महादेव जी का नाम 'नीलकंठ' हुआ। इधर अमृत पान के अभिलाषी देवता और असुरों में युद्ध उपस्थित हुआ, परम देव नारायण ने मोहिनी रूप धर कर असुर के निकट उपस्थित हुए। इस मोहिनी मूर्त्ति को देख कर विमूढ़चित्त असुर गण परिवेशनार्थ अमृत के भाण्ड को मोहिनी के हाथ में समर्पण करने में सम्मत हुए। अमृत को हर कर मोहिनी संग्राम से चल निकली। संग्राम समय देवगण मोहिनी के हाथ के अमृत को पान करने लगे। इसी अवसर में देवता का रूप धारण कर छिपा हुआ 'राहु' अमृतपान करने में प्रवृत्त हुआ। किन्तु चन्द्रमा और सूर्य ने इस की चुगली कर इस की कपटता को प्रकाशित कर दिया और परम देव नारायण ने 'सुदर्शन' (चक्र) द्वारा राहु के शिर को काट डाला।

कटा हुआ राहु का मस्तक आकाश मण्डल में उड़ कर पृथिवी पर गिर पड़ा। जो वैर निर्यातनार्थ (बदला लेने के लिये) अब तक बीच २ में राहु, चन्द्रमा और सूर्य को ग्रस लेता है जिस का नाम ग्रहण है ॥

देवासुर समर में स्वयं नारायण ने प्रवेश कर सुदर्शन द्वारा असुर दल को छिन्न भिन्न कर दिया और असुर मुण्ड भूमि पर शोभा देने लगे। मरने से अवशिष्ट असुरों ने रण में हार कर पृथिवी और समुद्र जल में प्रवेश किया। देवराज प्रमुख देवताओं ने अमृत भाण्ड अर्जुन को प्रदान किया।

श्रीमद्भागवत के ८ म स्कन्ध में ५ म अध्याय से ११ वें अध्याय तक समुद्र मथन का वर्णन है। भागवत के मत से जहां २ भेद दीख पड़ता है, उस का सारांश नीचे लिखा जाता है। महाभारत में देवताओं को अमृत पीने की इच्छा क्यों हुई? इस का कारण नहीं लिखा है; किन्तु श्रीमद्भागवत में लिखा है कि अत्रि के पुत्र शङ्करांश महर्षि दुर्वासा के अभिशाप से देवराज इन्द्र श्रीभ्रष्ट हुए। असुर युद्ध में देव-सेना हार गयी। इन्द्रादि देवगण ने स्वर्गराज्य से ताड़ित हो भूतल और पाताल पर आकर आश्रय लिया।

सुर गण ने स्वर्ग राज्य पर अपना अधिकार जमाया। यज्ञ आदि एक मा
द हो गया। भूख से पीड़ित इन्द्र आदि कों ने निरुपाय हो सुमेरु पर्वत के
टी पर जाय ब्रह्मा की शरण लियी। और ब्रह्मा, प्रमुख देवगण की स्तुति
सन्तुष्ट हो परमदेव नारायण ने देवराज इन्द्र को उपदेश दिया कि अमृत
न से बलवान् न हो कर तुम असुरों गण को रण में जीत नहीं सकते।
और देवता एवं असुरों के मिले विना समुद्र मन्थन से अमृत मिलने का
न्य दूसरा उपाय नहीं। इसलिये असुरगण के साथ कपट सन्धि कर दोनों
मिलकर समुद्र मन्थन करो। समुद्र मन्थन से उत्पन्न अमृत परिवेशन के
मय में असुरों को ठग कर देवताओं को अमृत पान कराऊंगा। नारायण
आदेश से इन्द्र ने असुर पति रैवत मनु-पुत्र बलि राजा के साथ सन्धि
पन कर समुद्र मन्थनार्थ उद्योग किया। इस के बाद देवता और असुर
ने मन्दर पर्वत को उखाड़ा और गरुड़ के पीठ पर मन्दर को रक्ख कर
द्र के किनारे ले आये। समुद्र मन्थन के पहिले हलाहल विष और क्रम
सुरभि, उच्चैःश्रवा, ऐरावत, ८ दिग्गज, और अभ्रमु प्रभृति ८ हस्तिनी,
रिजात पुष्प, अप्सरा, कमला देवी, वारुणी, कलश हस्त धन्वन्तरि ऊपर
। राहुवध उपाख्यान इस पुराण में भी है।

विष्णुपुराण के १ म अंश, ९ म० अध्याय में समुद्र मन्थन का वर्णन है॥२
ष्णुपुराण के मत से समुद्र मन्थन में पहिले सुरभि, क्रम से वारुणी, पारि-
त, शीतांशु चन्द्रमा, हलाहल विष, कमण्डलु हस्त धन्वन्तरि, और श्रीदेवी
त्पन्न हुई। किन्तु विष्णुपुराण में राहुवध का वर्णन नहीं है। ब्रह्म
र्त पुराण के प्रकृति खण्ड के ३८ वें अध्याय में समुद्र मन्थन का वर्णन है।
ब्रह्माण्ड पुराण के मत से समुद्र मन्थन में सब से पहिले धन्वन्तरि और क्रम
अमृत, उच्चैःश्रवा, नाना रत्न, ऐरावत, लक्ष्मीदेवी, सुदर्शन चक्र निकले
। इन के अतिरिक्त अन्यान्य पुराणों में भी समुद्रमन्थन का वर्णन है।
पुराणों में समुद्र मन्थन का वर्णन है कहने से शिक्षित लोगों में इस
पार को रूपक कह कर ग्रहण करना नहीं चाहते। किन्तु उपाख्यान के
भय का असम्भव होने की समालोचना करने पर इस की रचना अर्थवाद
त्र है यह सहज ही में सिद्ध होता है।
पहिले तो मन्दर पर्वत का उखाड़ना कैसे सम्भव होगा? दूसरे मथने की
ी वासुकी (सर्प) मथते समय जब उसी वासुकी शेष से मन्दर पर्वत को

धारण किया तो उन समय पृथिवी किस पर थी ? (क्योंकि पुराण में लिखे अनुसार लोग समझते हैं कि शेष नाग पर पृथिवी ठहरी है) तीसरे, पृथिवी पृष्ठ २० करोड़ वर्ग माइल है, उस में १५ करोड़ माइल में समुद्र विस्तृत है। इस सुविस्तीर्ण समुद्र का मन्थन कैसे सम्भव हो सकता ? चौथे, विष्णुपुराण के मत से महर्षि दुर्वासा प्रदत्त पारिजात माला देवराज इन्द्र ने ऐरावत के शिर पर पहिना दिया, ऐरावत कर्त्तृक महर्षि प्रसादभूत यह पारिजात माला भूमि के ऊपर फेंकी गई इस से महर्षि दुर्वासा के क्रोध की उत्पत्ति हुइ। और उसी क्रोध के कारण महर्षि का शाप हुआ। उस के पश्चात् समुद्र मन्थन में ऐरावत की उत्पत्ति हुई यह क्योंकर सम्भव होगा ? पञ्चम, महाभारत में लिखा है कि समुद्र मन्थन से निकले हुये रत्न आदित्य मार्ग से (अयन मार्ग से) देवताओं के समीप गये। यदि देवगण ने पृथिवी पर आकर पृथिवी पर के मन्दर पर्वत को उखाड़ कर पृथिवी पर के समुद्र के तीर में रखकर समुद्र मन्थन किया, तो मथने से उत्पन्न रत्न आदि आकाशस्थ अयन मार्ग में किस प्रकार देवताओं के निकट जासकते ? सुतरां यह अवश्य ही मानना पड़ेगा कि इस उपाख्यान में अवश्य ही कोई अति गूढ़ अभिप्राय है।

वेद पढ़ने से हमें इस बात का ज्ञान हुआ है कि ' समुद्र, ' ' सागर, ' । शब्दों से अधिकतर स्थानों में जल का वर्णन किया गया है।

और वेदाङ्ग + निरुक्त शास्त्र में (१।४।१५) " अन्तरिक्ष नामानि सगर समुद्र " ऐसा उल्लिखित है। " समुद्रात् अन्तरिक्षात् इति सायनः "।

और पुराण में जल शब्द कारण वारि अर्थ में व्यवहृत दृष्ट होता है *सुतरां महर्षियों ने पुराणों में समुद्र मन्थन समय में समुद्र और सगर शब्द को आकाश अर्थ में व्यवहार किया है ऐसा बोध होता है। और समुद्र मन्थन अर्थ से आकाशस्थ पदार्थ का मन्थन समझना उपाख्यान को सङ्गत और संलग्न होना-बोध होता है। और मन्थन से निकले हुए रत्न आदि देवता के निकट अयन मार्ग से जा सकते। समुद्र मन्थन उपाख्यान का प्रकृत अर्थ यह है कि समुद्र नाम अन्तरिक्ष और मन्थन नाम-खगोलस्थ दिव्य ग्रह, नक्षत्र आदिक के रूप, गति स्थिति आदि का पता लगाना (Astronomical deep enquiry) से

\+ युद्धाये इन्द्र वसु विभृता रथे इहो चहत्सर्पिणी । रयिं समुद्रा इत दिवस्पयांसि धर्म पुरस्पृहम्। ऋग्वेदे । १ । ४७ । ६ ।

*उत्पन्नाण्डेश्च कोपेन प्रह्लाद्दं गोन्धे जले। [illegible]

(ज्योतिष शास्त्र का अनुशीलन)। वेद विहित याग, यज्ञादि के समयादि नि
र्णय के लिये ज्योतिष शास्त्रामृत की प्राप्ति के लिये देव (प्रकाश) और अ
(अन्धकार) में मेल हुआ। दोनों पक्ष ने मिलकर आकाश मन्थन किया मन्द
पर्वत स्वरूप 'क्रान्तिपात विन्दु' में सर्प की आकार वाली रेखा संयोजि
हुयी, और क्रम से गोलार्द्ध रूपी दिन रात आविर्भूत और तिरोभूत ह
गोलक विलोड़ित और मथित हुआ क्रम से ज्योत्स्ना रूपिणी (चान्दनी
"लक्ष्मी" के साथ चन्द्रमा की स्थिति स्थान, राशि चक्र में निर्णीत हुई
और खगोल के बीच "सुरभि" (गौ) रूपिणी पृथिवी की अवस्थिति स्था
निराकृत हुई। "कौस्तुभ" रूप "ध्रुव" तारा विराट मूर्त्ति के हृदय में स्था
पित हुई। और ग्रह नक्षत्रगण राशि चक्र के यथा स्थान में सन्निविष्ट हुये
और "सावन" काल यथोचित रूप से निर्णीत होने लगा। याग, यज्ञादि
(तिथि आदि विचार पूर्वक) अनुष्ठित होने लगे। "धन्वन्तरि" रूप से कुम्भ रा
धनु राशि के ३० अंश अन्तर पर स्थापित हुआ। महर्षि पराशर ने विष्णु
पुराण के समुद्र मन्थन के उपसंहार में यों लिखा है कि:—

"ततः प्रसन्नभाः सूर्य्यः प्रययौ स्वेनवर्त्मना।
ज्योतींषिंच यथामार्गं प्रययुर्मुनिसत्तम!॥" १।९।११२॥

उपसंहार में वक्तव्य यह है कि, प्राचीन समय में सब जातियों में सूर्य्य
स्वामी और चन्द्रमा पत्नी रूप से परिगणित होते थे और वेद में भी यह
स्पष्टतया लिखा है:—

"समिथुनंउत्पादयते रयीञ्च प्राणञ्च।
एते मे वहुधा प्रजाः परिष्यतः॥" इति प्र० उपनिषदि ॥४॥

अर्थः—प्रजा सृष्टि कामना से ब्रह्मा ने चन्द्र, सूर्य्य को स्त्री पुरुष रूप से
सृष्टि किये और सूर्य्य चन्द्र से मनु और मनु से मानव जाति सृष्टि हुई।

फलित ज्योतिष के मत से यद्यपि चन्द्रमा स्त्री—ग्रह कह कर परिगणित
है किन्तु चान्द्रमास गणनार्थ चन्द्र, नक्षत्र वा तारापति कह कर परिगणित
होता चन्द्रमा का इसप्रकार स्त्री एवं पुरुष दोनों प्रकृति की रक्षा के लिये
पौराणिक गण 'चन्द्रविम्ब' और चन्द्रमा की ज्योति को स्वतन्त्र करने में
वाध्य हुए। समुद्र मन्थन से चन्द्रविम्ब का लक्ष्मी सहज नाम हुआ, जैसे:—
"दाक्षायिणीपतिर्लक्ष्मी–सहजश्च सुधाकरः"। शब्दरत्नावली।

चन्द्रबिम्ब तारापति हुए। और लक्ष्मधारिणी ज्योत्स्नारूपिणी चन्द्रिमा (चान्दनी) लक्ष्मी देवी विष्णुप्रिया या सूर्य-पत्नी हुयी। वैदिक प्राचीन पद्धति और पौराणिक नवीन-पद्धति, दोनों ही की समानता हुयी।

अब भी "ग्रीनलैण्ड" वासी इस्किमो जाति में यह विश्वास है कि सूर्य अपनी पत्नी चन्द्रिमा के पीछे २ युगयुगान्तर से दौड़ रहे हैं। किन्तु कभी चन्द्रिमा को स्पर्श नहीं कर सके। और इन दोनों की यह क्रीड़ा उपलक्ष ही में पृथिवी पर दिन रात होते हैं।

सूर्यसिद्धान्त आदि ज्योतिष शास्त्र में जो 'ग्रहण' के कारण दिखला ये गये हैं उस का स्थूल तात्पर्य यह है कि 'अयनवृत्त' परस्पर तिर्यक्भाव से अवस्थित है। चन्द्रमा के कक्षा वृत्त का एक अर्द्धांश अयन वृत्त के उत्तर में और अपर अर्द्धांश 'अयन वृत्त' के दक्षिण में अवस्थित और 'अयन मण्डल' और चन्द्रकक्षा के 'छेद विन्दुद्वय' को " पात " कहते हैं। इस पात के दोनों विन्दु की योग रेखा पर अमावास्या के अन्त में चन्द्र और सूर्य के अवस्थित होने से सूर्यग्रहण होता है। इस पातविन्दु-द्वय की योग रेखा के मध्यभाग में सूर्यबिम्ब अवस्थित रहते हैं। इस 'योगरेखा' को "राहु" कल्पना करने से सूर्य विम्बरूप "सुदर्शन" (चक्र) द्वारा " राहु " दो खण्डित होता है। और पात के दो विन्दुओं में से एक को "राहु" और दूसरे विन्दु को "केतु" कहते हैं। या इन दोनों विन्दुओं को " राहु " और सांप की देह की नाईं पृथिवी छाया मध्ये चन्द्र प्रवेश करने से 'चन्द्रग्रहण' होता है ऐसा कहने से पृथिवी छाया को 'केतु' कहना अनुचित नहीं। ऐसा अर्थ करने पर समुद्र मन्थन में राहु का अमर होना और 'सुदर्शन' द्वारा राहु का शिर कटना, दोनों ही व्यापार सङ्गत और वेदाङ्गीभूत ज्योतिष शास्त्रानुमोदित होते हैं।

समुद्रमथन-उपाख्यान में मेरु पर्वत, नारायणदेव, देव, असुर, अनन्तदेव, समुद्र, अमृत, कूर्म, इन्द्र, वासुकी, दूध, घृत, सुरभि, पारिजात-पुष्प, ऐरावत हाथी, उच्चैःश्रवा घोड़ा, वारुणी, सोम, लक्ष्मी, हलाहल-विष, नीलकण्ठ, अमृतभाण्ड, अर्जुन, दिति अदिति और धन्वन्तरि आदि, शब्दों की व्याख्या कियी गयी है, परन्तु वेद, निघण्टु, ब्राह्मणग्रन्थ, १८ पुराण तथा वाल्मीकीय आदि उल्लिखित-समुद्रमथन पर-विचार अलग पुस्तकाकार छपेगा-यहां विस्तार भय से-संक्षिप्त लिखा गया।

श्रीकृष्णलीला की आधिदैविक व्याख्या की अवतरणिका

चन्द्रमा पौराणिक देवता है। २७ नक्षत्र पुराणों में चन्द्रमा की २७ स्त्री
अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, (नक्षत्र) चन्द्रमा का पथ या गृहिणी हैं। इस रूपक में ज्
शास्त्र का व्याख्यान है जिसको समझने में कुछ नहीं होता किन्तु पुराणों
में ऐसे अनेक (हमारे शास्त्रों में प्रायः तीन प्रकार के वर्णन हैं एक आध्यात्मिक
दूसरा आधिदैविक और तीसरा आधिभौतिक) रूपक हैं, जिनका रूपकत्व भ
सहसा उपलब्धि नहीं किया जाता। श्रीकृष्ण नामक कोई व्यक्ति थे नहीं इ
कोई प्रमाण अब तक नहीं मिला है, प्रत्युत ऐसे प्रमाण तो भले ही पाये ज
हैं कि श्रीकृष्ण नामक एक श्रेष्ठ आदर्श पुरुष या पुरुषोत्तम महाचरित्र व्य
हुए हैं जिन का इतिहास महाभारत में है। एवं श्रीकृष्ण सम्बन्धी इस
के अतिरिक्त भागवत आदि पुराणोक्त ऐसे निन्दनीय उपाख्यान हैं जिन
लेकर विधर्मी लोग हमारे वेदोक्त सनातन धर्म तथा हमारे महात्माओं
कलङ्क दिखलाते हैं जिनका यथोचित समाधान हमारे भाई लोग न जान
के कारण नहीं कर सकते। वेद तथा वेदाङ्ग आदि वैदिक ग्रन्थों के देख
से पुराणोक्त उपाख्यानों का तात्पर्य समझ में आता है। जैसा कि पाठ
को वक्ष्यमाण उपाख्यान से ज्ञात होगाः–वैदिक काल से सूर्य, उपास्य दे
होते आये हैं, आब्राह्मण चाण्डाल पर्यन्त सब ही आर्य इस समय भी प्रा
से गात्रोत्थान कर, पूर्व मुंह हो सूर्यदेव को प्रणाम किया करते हैं; सूर्यदे
ही गायत्री के उपास्य देवता हैं। शालग्राम शिला आदि उपलक्ष्य कर जि
प्रकार ईश्वर की उपासना की व्यवस्था मानी जाती है, उसी प्रकार सूर्य
भी उपलक्ष्य कर ईश्वरोपासना की व्यवस्था की गई है। श्रीकृष्ण और अन्य
१० अवतार, सब ही विष्णु के अवतार कहे जाते हैं। श्रीकृष्ण नाम से कोई व्यक्ति
अवतीर्ण हुए, जब यह स्वीकार कर लिया गया, और वे अवतार कहकर मा
भी गये तब उन के जीवन के साथ विष्णु या सूर्य (कारण वेद में विष्णु औ
सूर्य एक) की लीला मिश्रित कर देना असम्भव नहीं है। श्रीकृष्ण की बाल्य-
लीला के साथ जो सूर्य की लीला मिश्रित हुई है। इस के बहुत प्रमाण पाये
जाते हैं। बाल्य-लीला यदि इस प्रकार रूपक के ऊपर न्यस्त न किय
जाता, तो परम पवित्र गीता शास्त्र के प्रवर्त्तक के चरित्र में "परदाराभिम
र्शन" दोष अवश्य ही लगता। परीक्षित राजा ने श्रीकृष्ण जी की बाल्य-
लीला सुनकर शुकदेव जी से इस प्रकार प्रश्न किया था किः—

"संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्यच ।
अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः ॥
स कथं धर्म्मसेतूनां वक्ता कर्त्ताभिरक्षिता ।
प्रतीपमाचरद्ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् ॥
आप्तकामो यदुपतिः कृतवान् वैजुगुप्सितम् ।
किमभिप्राय एतं नः संशयं छिन्धि सुव्रत ! ॥"

जिस संशय ने राजा परीक्षित के मन को डमाडोल या सन्दिग्ध दिया था वही संशय आज अनेक लोगों के मन में उठता है। स्वतः ही गों के मन में यह प्रश्न होता है कि धर्मसंस्थापनार्थ और अधर्म के नाश लिये जिन का जन्म हुआ है वे परस्त्रीगमन रूप अकार्य या कुत्सित कर्म में ों कर प्रवृत्त होंगे ?। या तो यह कोई आध्यात्मिक व्यापार है या कि- ज्योतिष शास्त्रोक्त विषय का रूपक है। राधा को ह्लादिनी शक्ति (अ- त्म) मानना पड़ेगा या राधा को "राधा" नक्षत्र मानना पड़ेगा। नहीं तो वतार की मर्य्यादा की रक्षा नहीं होती। शुकदेव जी के मुख से जो राजा रीक्षित के प्रश्न का उत्तर दिया गया है उसे कोई भी सन्तोष जनक (उत्तर) हीं मान सकता ।

"ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित् ।
तेषां यत् स्ववचो युक्तं बुद्धिमांस्तत् समाचरेत्" ॥

यह बात सुनने से किसी के मन की शङ्का नहीं जाती तो परीक्षित का भी सन्देह दूर हुआ हो या नहीं इस में सन्देह ही है। "मैं हजारों दुष्कर्म करूं- गा, उस पर कोई ख्याल न करना मैं जो कहूंगा वही करना"। ऐसी बात किसी धर्म प्रवर्तक व्यक्ति के मैं शोभा नहीं देती। अवतार का प्रयोजन क्या ? इस पर अवतारवादी लोग कहते हैं कि मनुष्यों को शिक्षा मिलना ही अव- तार का प्रयोजन है। जिस कार्य्य से मनुष्यों को सुशिक्षा न हो कर कुशिक्षा होती ऐसे कार्य्यों को अवतार में आरोपन करना नितान्त असङ्गत है। चाहे जिस भाव से ही देखा जावे श्रीकृष्ण जी की रासलीला को ऐतिहासिक घटना कह कर मानना बहुत कठिन है। रास लीला में मानालङ्कार का आ- ध्यात्मिक वर्णन भी है। इस से जो विद्वान्—ज्योतिष के अनुसार रूपकवर्णन

किया है। इससे हमारा प्रयोजन यह है कि मनुष्य को सब विषयों में सत्य
अनुसन्धान करना चाहिये। यदि हमारे इस रूपक वर्णन में कोई भ्रान्ति सिद्ध
तो उसे हम सादर स्वीकार करेंगे। श्रीकृष्ण वा श्रीरामचन्द्र आदि महापुरुषों
किसी २ चरित में कोई २ अंश रूपकालङ्कार से वर्णन किये गये हैं ऐसा क
से उन महात्माओं की सत्ता नष्ट नहीं होती अर्थात् ऐसा कोई न समझे
इन महात्माओं ने जन्म ही नहीं ग्रहण किया केवल रूपक मात्र है। अ
उस में उन २ अवतारों के उपासकों के क्षोभ का कोई कारण नहीं। सर्व
आराध्य आदिक के चरित में जो कई एक अर्थविहीन उपन्यास या क
आरोप किया जाया करता, वह निर्दोष, सार्थक, रूपक मात्र, और उस
अवतार आदि के चरित्र में कलङ्क स्पर्श न हो यही हमारे इस रूपकवर्
का उद्देश्य है। अब हम आगे श्रीकृष्णलीला-का वर्णन करेंगे।

श्रीकृष्ण-लीला।

श्रीकृष्ण जी महाराज श्रीविष्णु भगवान् के अवतार कहे जाते हैं
वसुदेव और देवकी श्रीकृष्ण जी के पिता, माता, श्रीराधिका श्रीकृष्ण जी
आधाना शक्ति,-वृन्दावन, मथुरा, द्वारका और कुरुक्षेत्र, श्रीकृष्ण के लीलास्थ
कहे जाते हैं असुरविनाश के लिये श्रीकृष्णजी का पृथिवी पर अवतार
उद्देश्य माना जाता है। श्री मद्भागवतपु० विष्णु पु० और ब्रह्म वैवर्त्त पुरा
में श्रीकृष्ण लीला वर्णित है।

वैदिक आर्य्यों का परमदेव (१) सूर्य्य देव और वेदोक्त प्रमाण से सूर्य क
दूसरा नाम विष्णु (२) है और विष्णु सूर्य्य का अधिष्ठात्री देवता (३) है। प्राची
आर्य्यलोग प्रकृत वेदोक्त देव भिन्न अन्य देवोपासक थे ऐसा कदापि सम्भव नहीं

गोलकस्थ राशिचक्र में सूर्य्य देव का एक वर्ष परिभ्रमण व्यापा
उपलक्ष करके आर्य्य जाति के मनोरञ्जन के लिये पूर्व समय में श्रीकृष्ण लील
का अङ्कुर आरोपित हुआ किन्तु क्रमशः पुराणों में इस लीला रूपी वृक्ष की शा
खा प्रशाखा, पल्लव, होकर अब इस (लीलारुपी) वृक्ष में विषमय फल हो गये
(कुदरती प्राकृत राशि लीला का मर्म भूल कर श्रीकृष्ण महाराज जैसे आ
दर्श पुरुष या पुरुषोत्तम के चरित्र में कलङ्क लगा) नहीं तो अधःपतन शील
भारत भूमि में कुरुचि की धारा बहती हुई आदर्श पुरुष श्री कृष्ण जी को असत
स्पर्श कलङ्करूपी समुद्र में निमज्जित हो उछलना डूबना क्यों पड़ता !!!

(१)-सप्त युक्त सविता देव। (२)-ऋ० = । ७३। १० रथम् १। २२। १६॥ (३)-गायत्री॥

तत्काल की विचित्र महिमा है। अनन्तकाल, अनादि देव को प्राप्त करने के लिये उद्यत है। अनादि, देव आज भारत में कलुषित भाव से पूजित होते हैं। सद्गुराग न होने से शीघ्र पूजा लोप होगी। भारत के विप्र कुल सदा-शय माधुचित्त यह रूपक कल्पना करके भी आज सनातन आर्य्यसमाज के निकट दायी हैं। इस जातीय ऋण विमोचनार्थ आज हम श्रीकृष्ण-लीला के रहस्य भेद करने में कृत संकल्प हुए हैं।

फाल्गुन की अमावास्या को सायङ्काल में एक वार गोलक (आकाश की ओर) सन्दर्शन करो। तब देखोगे कि आद्यतन श्रीकृष्ण लीला गोलक में अनश्वर अक्षरों में अङ्कित हो रही है। तुम लोग अपने मस्तक की ओर (आकाश में) तारक मय धनुषाकृति जो नक्षत्र देखते हो उस का नाम "पुनर्वसु" है। इस वसु नक्षत्र या वसुदेव की गोद में * यह देवकी विरा-जमान है। इस वसु नक्षत्र के तृतीय पदान्त में जो विन्दु देखते हो इस विन्दु का नाम 'कर्कट क्रान्ति' है। यह विन्दु उत्तरायण की परम सीमा पर अ-वस्थित है। इस विन्दु के स्पर्श करने पर सूर्य्यदेव की अयन गति शेष होती है। और इस पर नये वर्ष के "वालार्क" का उदय (जन्म) होता है। यह विन्दु वाल (नये साल का सूर्य्य) वाल कृष्ण के जन्म (उदय) स्थान है। क-ल्पना नहीं समझो नव दुर्वादलश्याम (१) तुम्हारे सामने जाज्वल्यमान हो रहा है। श्रीकृष्ण रेखा में शिवमण्डल छाया तल (२) नेदक्षिणाङ्गुल में यात्रा किये-हैं सम्मुख में कर्कट सिंह कन्या तुला वृश्चिक और धनु राशि। श्रीकृष्ण यमुना (३) अतिक्रमण कर प्रथमतः अग्रसर हुए। सम्मुख में कर्कट राशिस्थ तीन ता-रात्मक वाण के आकार का पुष्य नक्षत्र पश्चिमाभिमुख विराजमान है। श्रीकृष्ण पुष्य संक्रमण के पीछे कर्कट राशिस्थ ह्रद सर्प कालिय (४) कालीय सर्प का मस्तक षट्तारकमय चक्राकृति और इसको आश्लेषा नक्षत्र कहते हैं। इस की अधिष्ठात्री देवता 'फणी' हैं।

श्रीकृष्ण ने आश्लेषा में पैर रखकर कालीय सर्प को दमन किया। सम्मुख

* पुनर्वसु नक्षत्र की अधिष्ठात्री देवता [illegible] अदिति, [illegible]। [illegible] श्रीकृष्ण जन्मस्थान [illegible] इति [illegible]। [illegible] नक्षत्र में [illegible] का नाम [illegible] है।

(१) Castor star अर्थात् [illegible] (२) Lynx Constellation or Canis minor (३) [illegible] (४) Hydra Constillation

में सिंह राशिस्थ षष्ठ तारकामय मघा नक्षत्र है और इस की अधि
देवता 'यम' हैं मुतरां मघा की ज्योतिः नव प्रसूत बालक का जीवन
रक "अहि" पूतना नामक बाल रोग का उत्पादक यही मघा (१) पूतन
मघा की योगतारा (२) देवकी के (अयन रेखाद्व) उपरिस्थ कहने से
को मातृपद में अभिषिक्त कर श्रीकृष्ण को स्तन्य देने में व्यापृत किया
है। सूर्य्य देव के मघा में अवस्थिति काल में मघा आच्छादित होत
श्रीकृष्ण ने मघा संहार कर पूतना को विनाश किया। सामने सिंहरा
पूर्व एवं उत्तर दोनों फल्गुनी वा अर्जुनी नक्षत्र (३) इन दो नक्षत्रों को अ
कर श्रीकृष्ण ने "यमलार्जुन वृक्ष" भञ्जन लीला दिखलाया है। सम्मु
कन्या राशिस्थ हस्ता चित्रा, तुला राशिस्थ स्वाती, विशाखा, वृश्चिक रा
अनुराधा, ज्येष्ठा, और धनु राशिस्थ मूल, पूर्वाषाढ़, और उत्तराषाढ़ ये नव
हैं। ये ही आधुनिक पौराणिक नव ९ नारी हैं (४) आठ सखी और आद्य
विशाखा या राधा (५) विशाखा की आकृति पुष्पमाला या तोरण की
या कमल कीसी है। और विशाखा की अधिष्ठात्री देवता 'शक्राग्नी, या
द्युत' हैं। इस विद्युताग्नि का नाम यही 'र' (६) अग्नि का आधार कह क
शाखा 'राधा' नाम से विख्यात (७) है। श्रीकृष्ण, चन्द्रावलि, चित्रलेखा। ल
(८) इन तीन सखियों के साथ सम्भाषण कर श्री राधा के घर में आकर देख
अयन रेखा को (९) श्रीराधा ने अधिकार किया है। श्रीकृष्ण और श्रीराधा
मिलन हुआ। यह श्री राधा कौन हैं? वृषराशिस्थ सूर्य्य देव "वृषभानु" रा
'कलावती, चन्द्रिमा उन की पत्नी हैं। कलावती अपने पति वृष (राशिस्थ सू
भानु (राजा) से मिलने की आशा में उन्मत्त होकर पूर्णाकृति ला

---

(१) Regulus (२) मघा को पूतना कहने का और भी कारण है मघा की आकृति हल की सी है, और [illegible] में [illegible] Flag की नाई मालूम पड़ता है इस कारण मघा को "ध्वजिनी" कहना सार्थक है। और "ध्व[illegible] [illegible] सेना" [illegible] इत्यमरः। इस अमरकोश प्रमाण से पाया जाता है कि पूतना शब्द [illegible] के अर्थ में व्यवहार करने योग्य है और मघा पूतना दोनों ही 'ध्वजिनी' कहने से मघा पूतना [illegible] पूतना को श्रीकृष्ण जी के मातृस्थान में बिठलाने के अनेक कारण हैं। जैसे सुनीथ [illegible] (वर्ग वा गृह[illegible] "[illegible]" [illegible]। श्रीकृष्ण जी को पूतना के स्तन्य देने का और भी कारण है [illegible] (वैद्यक) में यह पूतना "[illegible] सद्य मरोधने पूर्ण धात्री [illegible] विरोधये[illegible]

(३) [illegible] १० । ८५ । १३ ॥

(४) [illegible], चित्रलेखा [illegible] विशाखा [illegible] देवी चम्पकलता [illegible] और इन्दु लेखा ये ८ हैं।

(५) "राधा विशाखा पुष्ये तु" इत्यमरः (६) "[illegible] पावके [illegible]" इति मेदिनी (७) "वैशाखे माधवो [illegible]" इत्यमरः (८) [illegible] के अधिष्ठात्री देवता 'पवन' और स्वाती तुला राशि में अवस्थित होने से इस का [illegible] '[illegible]' है। और [illegible] शुक्र वर्ण है (९) अयन [illegible] ॥

लिये ज्येष्ठा नक्षत्राभिमुख यात्रा काल में कमलाकृति विशाखा के बीच विद्युत रूप राधा को प्राप्त हुई। इस स्थान में राधा का पौराणिक जन्म और लालन पालन आदि पाठक स्मरण करें।

श्रीकृष्ण का, तुला राशि में राधा नक्षत्र भोगकाल में आकाशाग्नि (सूर्य) आन्तरिक्ष अग्नि में (बिजुली में) मिलन हुआ। (१) सांख्य शास्त्रोक्त प्रकृति रूप का मिलन हुआ। क्रमशः कार्त्तिकी पौर्णमासी आयी विद्युतमयी पट्कृत्तिका की शोभा में पौर्णमासी की रौपमय' ज्योत्स्ना, वर्षित हुयी। कार्तिकी पौर्णमासी की कौमुदी ज्योत्स्ना में जगत् भासित और हासित होने लगा। पशु, पक्षी आदि सब जीवगण और जगत् जन अह्लाद से पुलकित हुए। जगत् जन इस विमुग्ध कर रजनी को नृत्य,गीत, द्वारा सुख से व्यतीत करने लगे। यह विचित्र नहीं। इसी जगत् मय नृत्य,गीत, का नाम 'रासलीला' (२) है। श्रीकृष्णदेव श्रीराधा और आठ सखी मिल कर रासलीला में आज वृन्दावन में प्रमत्त हुए। आज पौर्णमासी कलावती और मातृकागण (३) (पट्कृत्तिका) अपनी कन्या राधा के शुभग्रह में उन्मत्ता हुयी। विमान पर पुरन्ध्रीगण, आज अट्टहास करती हैं। प्रकृति की इस अनुपम शोभा में संसार मुग्ध हो रहा है।

यह 'वृन्दावन' कहां? यह देखो 'गोलक' में लाखोलाख गोप। (४) गोपी अर्थात् तारक तारका परिवेष्टित हो धाता, इन्द्र, सविता इत्यादि द्वादश आदित्य (५) रूप में श्रीदामनु, सुदामन, प्रभृति' द्वादश गोप मण्डल के साथ श्रीसूर्यदेव, श्रीकृष्ण' नाम से वृन्दावन में रासलीला में विराजमान (६) हैं। यदि इस प्राकृतिक रासलीला सन्दर्शन से आप के हृदय में गम्भीर विमल ईश्वर के प्रेम का उदय हो कर मन, प्राण, पुलकित न हो और कलुषित भौतिक प्रेमभाव यदि किसी के क्षुद्र कुसंस्कार तिमिराच्छन्न हृदय में प्रवेश करता हो तब हम और क्या कहेंगे, हां इतना तो अवश्य कहेंगे कि भाइयो! श्रीकृष्णभगवान् में चाहे ईश्वरभाव से अपनी रुचि अनुसार पूजा करो परन्तु ऐसे पुरुषोत्तम आदर्श पुरुष के सच्चरित्र में पापमय लीला चित्रित आपे को कलङ्कित न करो और नारकी न बनो!!!

हमने पुनर्वसु नक्षत्र से राधा नक्षत्र तक आदित्यदेव' (श्रीकृष्ण) का

---

(१)—ऋक् १। १५। १०॥ (२)—[illegible] रस। [illegible]। (३)—[illegible]। (४)—[illegible] विरज [illegible] १। ६२। ४ प—[illegible] (५)—[illegible] में [illegible] सूर्य के नाम १ धाता, २ इन्द्र, ३ [illegible], ४ विवस्वान्, ५ भग, ६ पर्जन्य, ७ [illegible], ८ मित्र, ९ विष्णु, १० वरुण, ११ पूषा और १२ अंश हैं। [illegible] (६) [illegible]

अनुसरण कर रासलीला का बोध कराया परन्तु इस में भी
बोध न हुआ है। क्योंकि बलदेव, नन्दगोप, यशोदा देवी और
इन के न होने से रासलीला का आरम्भ नहीं हो सकता
तरह आदित्य देव की कुटगति (१) नहीं होती, पुनरां नन्दरा
श्रीकृष्ण को ले कर जाने के लिये उपाय रहित (२) इस क्र
बलदेव आदि को नन्दालय से रासलीला में निमन्त्रण कर
बहुत पर्य्यटन से प्रयोजन नहीं।

यह देखो एकबार, राशिचक्र में दृष्टि डालकर देखो क
के पश्चात् भाग में वृषवीथि में। (३) वृषराशि में यशोदादेवी (४)
देवी (Aldebaran in Hyades) विराजती हैं। वृषराशि
देव (५) देवराज सखा नन्दराज कहां? "योयस्यमित्रं नहि तस्य
हम ने आपतत नन्दराज को वृषराशि में स्थापन किया। विचार

यथा स्थान में विष्णुपुराण के ५म अंश में बलदेव जी क
वर्णित नहीं है। यथा स्थान में श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध
में बलदेव जी का जन्मवृत्तान्त का विवरण प्रकाशित नहीं।
ब्रह्मवैवर्त्त पु० के जन्मखण्ड में संकर्षण देव (६) का जन्मवृत्तान्त
किन्तु एकबार इसी के साथ बुध-जन्म वृत्तान्त स्मरण करे
वसुदेव पुत्र संकर्षण रोहिणी गर्भजात कह कर 'रौहिणेय हैं' वि
नन्दन' या 'वसुदेवनन्दन' नाम क्यों नहीं पाया? तृतीय वसु
बुध ने सौम्य' नाम पाया किन्तु 'तारकानन्दन' या तारास
नहीं पाया? दोनों ही का जन्म वृत्तान्त रूपक मूलक है। हम ए
शास्त्र में बुध की आविष्क्रिया घटना में पाते हैं कि, बुध "रौ
पुराण में रूपक बिगड़ने के भय से इस का इतिहास नहीं वि
किस कारण से बुध का 'रौहिणेय' नाम पड़ा।

---

(१)-Rotrograde motion (२)-राशि चक्र में आदित्य देव मेष राशि मे
वृष आदि द्वादश राशि एक वर्ष में परिभ्रमण करते हैं। वृष राशि में नन्दालय मिथुन रा
के पश्चिम में वृष राशि अवस्थित सुतरां राशि चक्र पर्यटन न करने से श्रीकृष्ण वृष राशि में
(३)—वृष राशि के पूर्व और पश्चिम सीमान्त में स्थित दो ध्रुवक रेखा के मध्यवर्त्ती गे
कहते हैं। (४)—वृष राशिस्थ पाटलवर्ण देवमातृका षोडश मातृका में देव सेना या षष्ठी नाम
वदन्ति महा षष्ठी पण्डिता शिशुपालिकान्। देवमातृका ने श्रीकृष्णलीला में यशोदा नाम प
करने से यशस्वि धवला॥ (५)—ज्येष्ठमूले भवेदिन्द्रः इतिकौर्मे १८ अध्याय॥

(६)—देवक्याः सप्तमे गर्भे कंसो रक्षा दधौ भिया। रोहिणी जठरे माया तया कृष्य रक्ष
तस्माद् बभूव भगवान् नाम्ना संकर्षणः प्रभुः।

(७)—तारका गर्भे सम्भूत स एव च बुधः स्वयम्। ब्रह्मवै०पु०प्र०खण्डे६१अ०॥ (८)—
विष्णुर्वेदान्ति[illegible]। प्रतद्वरस प्रभावस्य वसत्येषो तस्मात् स्मृता॥ गदा वद वसुगिण इ

इस समय देखा जाता है जो, बलदेव का नाम रौहिणेय है। और बुध का भी नाम रौहिणेय है। गदाधारी (१) यह रौहिणेय श्रीकृष्ण के चिरसङ्गी हैं। गदाधारी अन्य रौहिणेय आदित्यदेव के चिरसङ्गी हैं। गदाधारी अन्य रौहिणेय आदित्यदेव के चिर सङ्गी हैं (२)। आदित्यदेव श्रीकृष्ण हुए, बलदेव को न्यायानुसार बुध ग्रह कहा जावे। घर का घर ही में मिला "गृहंचेन्म-धुविन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेत्" इस समय हम रासलीला वर्णन में प्रवृत्त हुए।

रास-पूर्णिमा ॥

(१)–[illegible]। (२)–बुध ग्रह सूर्य से ३० अंश के बीच में रहता है अतएव यह ग्रह, सूर्य किरणों ही में छिपा रहता है।

ाक के कदम्ब के (१) निकटतर है। कुरुक्षेत्रपर्व में हम प्रथम दो का ही प-
य देंगे। द्वितीय दो कृष्णलीला की ललिता और श्रीराधा, तृतीय दो का
चय अङ्क में होगा। यह देखो! श्रीराधा का किरीट, राशिचक्र के एक धनु
२) शिरोभाग में उच्चासन पर बैठा है। वाम भाग में ललिता सखी, अ-
न्य सखियों में चन्द्रावली (हस्ता) (३) राशिचक्र के दक्षिण में, चित्र लेखा
चित्रा नक्षत्र) राशिचक्र के मध्य में। ललिता (स्वाती) और श्रीराधा की
विशाखा का) (४) अवस्थिति स्थान ऊपर कहा गया है। रङ्गदेवी राशिचक्र
मध्यमें अवस्थित है। सुदेवी (५) चम्पक लता (६) राशिचक्र के दक्षिण में
स्थित तुङ्गदेवी हैं तुङ्ग में और इन्द्रलेखा (७)—राशि चक्र में अवस्थित हैं।
ान मण्डल के अपर धनु राशि के शिरो भाग में वृष राशि में, यशोदा
ी (देवमातृका कृत्तिका) (८) और बलदेव की माता रोहिणी देवी के
मभाग में कलावती कौमुदी चन्द्रिमा के अवस्थित का स्थान है।

यह देखो! कलावती आश्विनी पूर्णिमा, अश्विनी नक्षत्र में अवस्थित
: रास-दर्शन के उल्लास में द्रुत वेग से राशि चक्र में दौड़ रही हैं। श्रीकृष्ण
ार श्रीराधा में परस्पर रासलीला निमित्त विचार हो रहा है। कलावती
श्विनी से भरणी, कृत्तिका, रोहणी, मृगशिरा, आदि एक २ नक्षत्र अतिक्रम
र रही हैं और क्रम से जामाता के निकटस्थ होती जाती हैं, मानो नील
अवगुण्ठन मुखकमल आच्छादन करती हैं (९) पुनर्वसु नक्षत्रमें (११) विष्णु तारक
दर्शन से कलावती (१२) ने ८ कलाओं को आच्छादित कर लिया है (१३)
व क्रमशः श्रीराधा नक्षत्र में आकर जामाता के दर्शन में १६ कला आ-

---

(१)—ध्रुव और अभिजित् नक्षत्र के मध्य मध्यवर्ती बिन्दु। ध्रुव से २४ कला दूर पर कदम्ब अवस्थित है। [illegible] (२)—Amphi theatre. (३)—हस्त के ५ नक्षत्र [illegible] हैं॥ (४)—विशाखा के [illegible] तुलाराशि में और [illegible] वृश्चिक राशि में और [illegible] [illegible] दक्षिण में, [illegible] है। [illegible] के [illegible] १० [illegible] है। (५) [illegible] (६)—[illegible] (७)—Line of beauty. (८)—[illegible] (९)—[illegible] है।

(१०)—[illegible] (११)—[illegible] (१२)—[illegible] $\frac{१}{४}$ [illegible] $\frac{१}{४}$ =१६ [illegible] (१३)—[illegible]

च्छादन किये (१) और अनुराधा में उपनीत हो कलावती अवगु
विमोसनार्थ उद्योग करने पर देखती हैं कि श्रवणायस्थित त्रिविक्रम क
में श्वशुर के दर्शन से बड़े पुलकित हैं । कलावती अर्द्धावगुण्ठित भाव
अथवा अतिक्रम कर धनिष्ठा आदि एक २ नक्षत्र को अतिक्रम करते
सुख वामल के नील अवगुण्ठन क्रम से मोचन करते २ चलने (२) ला
अन्त में वृषराशि में उपनीत हो कृत्तिका और रोहिणी के वाम
में आकर आश्वस्त भाव से आनन्द में नील अवगुण्ठन एक मात्र खिसो
कर सादर ऊंचे आसन पर बैठ गयी । यों कार्त्तिकी पूर्णिमा की कौ
पौर्णमासी का उदय हो कर ज्योत्स्ना में जगत् आलोकमय हुआ । कौ
की ज्योत्स्ना—अञ्चल में आवृत्ता हो कर यशोदा देवी (कृत्तिका) कि
नीलमणि की रासलीला देखने लगीं । और बलदेव की माता भी अर्द्धा
पिठत सुख से रासलीला देखने लगीं । किन्तु पौर्णमासी कलावती अयशु
सुलभ अकुण्ठित भाव अवलम्बन से सम्पूर्ण जगत् के सामने पृथिवी के पृष्ठ
से वासर (दिवस) घर में रासलीला देखने की कामना से किनारे हो
लुकाछुप करती हैं । पुनर्वार जगत् की ओर चाह कर श्रीराधा की सम्पद्
गर्वित हो ठट्ठा कर हंसती हैं । उषा काल में कौमुदी चन्द्रमा वांके नज
उभय पार्श्वस्थ वैवाहिक द्वय (३) की ओर दृष्टिपात कर अस्फुट स्वर से कह
हैं कि देखो देखो बहिन ! हमारी राधा श्याम स्वामी समागम से सखीकुलम
(तारानिचय) कहां छिप गयी ? अभी तो कार्त्तिक की चन्द्रिमा के आह
से नाचती २ उन्मत्ता प्रायः हो कर पश्चात् वर्त्ती वैवाहिक सच्चिदानन्द गोप
कहते हैं कि वाह ! आज हमारा क्या शुभ दिन है ! आ–नन्दपुत्र आनन्द
श्रीकृष्णकी कृपा से हमारी राधा पवित्रा हुयीं । नन्दराज अह्लादसे गदगद
में कहते हैं कि श्रीमती अहह ! तुम्हारी सुता राधा ही आद्या (४) शक्ति
यह देखो ! श्रीकृष्ण का रश्मि चूड़ा (चूड़ें शुक्र मयूख की) तुम्हारे राधा
पदतल को मार्जन और धौत करता है ।

यह देखो ! कौमुदी चन्द्रमा के उर्द्ध्व भाग में प्रजापति ब्रह्मा ' औरि
गयदन (५) विराजमान है । आज प्रजापति ब्रह्मा पूर्ण चन्द्ररूपी हंस

(१) – [illegible] ॥ (२) – [illegible] की [illegible] । (३) – यशोदा और रोहिणी । (४) – कार्त्तिकी [illegible] मे [illegible] करने पर [illegible] का [illegible] – पूर्ण [illegible] का [illegible] होता है ॥

(५) Auriga constellation [illegible] के [illegible] में प्रजापति नक्षत्र Delta auriga [illegible] में [illegible] (Star capella) [illegible] में [illegible] (Star nath) [illegible] [illegible] (The Lids) [illegible] चिन्ह (Emblem

नन्द आसीन हैं। रासलीला देखने के आनन्द में ३३ कोटि देवता के साथ द्याधर, अप्सरागण, यक्ष, रक्ष, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्यक, सिद्धचारण, ग, दानव, असुर, आदि परिवृत्त होकर रासमण्डल के ऊर्द्ध देश (१) में आसीन । इसी उपलक्ष से श्रीराधा 'व्रजेश्वरी', रासेश्वरी', नाम से पुराणों में कही गी हैं। और महर्षि वाल्मीकि ने विशाखा को सूर्यवंश का कुल नक्षत्र ह कर वर्णन किया है। और वङ्गाल के कवियों ने "राधी राजा," राधी किशोरी" नाम से श्रीराधा का नाम कीर्तन किया है और इसी पाश्चात्य ज्योतिषी लोगों ने श्रीराधा नक्षत्र को राजमुकुट नाम लिखा Corona) (२) है। आज राशिचक्र के केन्द्र स्थान में श्रीकृष्ण (सूर्यदेव) और उन दक्षिण भाग में चन्द्रदेव (बुधग्रह) अवस्थित हैं। और राशिचक्र में गोपी-ल (तारकागण) श्रीराधा और ८ सखियों के समभिव्याहार में चक्र नृत्य में ाथ कर कृष्ण बलराम की प्रदक्षिणा करती हैं। चन्द्रदेव ने भी रसोन्मत्त हो क्र नृत्य में साथ दिया। रासेश्वर वासुदेव ग्रह-समूह की गति परीक्षा करते हैं। ार्त्तिकी चन्द्रिका ज्योत्स्ना वसु-विस्तार पूर्वक स्वर्ग मर्त्य पाताल आलिङ्गन र स्नेह में डूब रही है। कार्त्तिकी पौर्णमासी के रौप्यमय ज्योत्स्ना सागर में तीनों जगत् बह चले। आनन्द मय सुधांशु सागर में जीव मात्र के हृदय निमग्न और अभिषिक्त हुए। नक्षत्रीय विमल ज्योत्स्ना जल में विश्व ने अव-गाहन किया। वासुकी (कार्त्तिकी) ज्योत्स्ना ने भूतल को विस्तार कर ब्रह्मर्षि देवर्षि और राजर्षिगण को आलिङ्गन कर विमुग्ध किया। इस मोह में विमुग्ध होकर हमारे ऋषियों ने सर्व भूतमय सर्वव्यापी परम पुरुष को रूपमात्र से [illegible] रूप में [illegible] नारायण का ही वर्णन किया है। और [illegible] की इस प्राकृतिक शोभा का (३) मूल कारण है पहले से [illegible] को ही विष्णुभाव से पूजा किया करते थे। और श्रीकृष्ण लीला की रूपक रचना किये हैं। अदितिनन्दन आदित्य देव में और देवकी नन्दन श्रीकृष्ण में भेद कहां? क्या ऋषियों ने स्पष्ट नहीं कर दिया है कि "अदितिर्देवकीत्यभूत् (हरिवंशे) (अदिति) और "देवमाता च देवकी" (ब्रह्मवैवर्त्त अमरकोषे) क्या ऋषियों ने स्पष्ट नहीं कर दिया है कि आ-दित्यदेव ही देवकीनन्दन है?

(१) [illegible] (२) [illegible] (Corona)

(३) [illegible]

" ततोऽविन जगत्पद्यग्रोधायाच्युत भानुना ॥
देवकी पूर्वं सन्ध्याया माविर्भूतं महात्मना " विष्णुपुराणे ५ अ० ३ श्लो०

इतना भ्रान्त क्यों ? क्या वेदाङ्ग भूत ज्योतिषशास्त्र यह नहीं कहता कि यशोदा (कृत्तिका) की अधिष्ठात्री देवता दहन (अग्नि) और रोहिणी का कमलज (ब्रह्मा); अग्नि एवं ब्रह्मा एक ही हैं। इन ब्रह्मा के नाभि पद्म (राशि चक्र के केन्द्र में) विष्णु या आदित्य देव अवस्थित हैं। यह देवी रोहिणी के शिरोभाग में प्रजापति ब्रह्मा हैं। यह ब्रह्मा ही नन्दराज हैं।

रासलीला—वस्त्रहरण ॥

राशि चक्र से परिचय रहने पर रासलीला समझ में आसकता है कि " वस्त्रहरण " (लीला) समझने के लिये " गोलक " ज्ञान प्रयोजनीय है। पृथिवीस्थ ज्योतिषी गण ने पृथिवी के मेरु दण्ड (axis) उत्तर में प्रसारित कर गोलक में जो विन्दु प्राप्त होते हैं उस का नाम 'ध्रुवविन्दुरेखा' रक्खा है और पृथिवी से दृश्य गोलक, वि-षु-वत् मण्डल द्वारा द्विधा किया है।

राशि चक्र के केन्द्रस्थ ज्योतिर्विद (?) राशि चक्र के मेरु दण्ड को (axis) उत्तर में प्रसारित कर गोलक में जो विन्दु प्राप्त होता उस का नाम कदम्ब रक्खा है। और इस केन्द्र से दृश्य गोलक अयनमण्डल द्वारा द्विधा किया है। मान लो कि 'कदम्ब' पर सूर्य को रखने से अयनमण्डल से दक्षिण भागस्थ दृश्यगोलकार्द्ध अन्धकारमय होगा।

इस समय वस्त्रहरण देखो ! असीम गोलक के बीच आदित्य देव अवस्थित हैं। आदित्य देव का केन्द्र (centre) और गोलक का केन्द्र एक ही है ऐसा कहने में दोष नहीं। आदित्यमण्डल को वेष्टन कर राशि चक्र अवस्थित है; इस ससूर्य राशि चक्र का नाम 'सुदर्शनचक्र' है। इससे नाम की भी सार्थकता होती है यह देखो। सवितृ मण्डल के बीच नारायण श्रीकृष्ण इस केन्द्र में अवस्थित कर ससूर्य राशि चक्र को कुलाल-चक्र की नाईं घूमाते हैं। श्रीकृष्ण इस कुलाल चक्र का शक्तिमय मेधि काष्ठ हैं। सूर्यमण्डल--कुलाल चक्र का इहुकाष्ठ और राशि चक्र कुलाल चक्र का वेष्टन काष्ठ (वेलन काठ) है। यही कुलाल चक्र रासलीला का आदर्श (१) है।

गोपीगण (२७ नक्षत्र मय) राशिचक्र में अवस्थित रहकर सूर्य किरणरूपी वस्त्र में आवृत्त हो जगत् के चक्षु पर रह कर लोकों के अदृश्यभाव में

(१) कुलालचक्र प्रतिम मण्डल पद्मजाङ्कितम् । इति उत्कलकलिका ॥

य-गीत में मगन हैं। कुलाल चक्र की नाईं समूचे राशिचक्र घूमता है। न्तु सूर्य केन्द्र को त्याग नहीं करते हडूकाष्ठ की भांति केवल घूमते हैं। पीगण चक्र नृत्य में आदित्यदेव श्रीकृष्ण की प्रदक्षिणा करती हैं। यथा ूय मनोहर व्यापार है! विराट पुरुष का विराट व्यापार!

विराट पुरुष के नाभि स्थल में सूर्य हैं। किन्तु आदित्य देव पर्यन्त ल के वशवर्ती हैं। तृतीय दिन आदित्य देव को श्रीराधा नक्षत्र त्याग : अनुराधा नक्षत्र में पदार्पण करना पड़ेगा। किस का साध्य है कि इस यम को तोड़ सके? इधर गोपीगण रास में उन्मत्ता हैं। अनुरोध तो सुनेंगी हीं; रास में बाधा डालेंगी नहीं। उधर श्रीकृष्ण ने अपना माया-जाल विस्तार या। विराट के नाभि देशस्थित सूर्य कदम्ब पर स्थापित हुए और अयन स्थल के दक्षिणस्थ गोलकार्द्ध निवासिय हुआ। गोपी का-किरण वस्त्र अपहृत ीनागया) हुआ? जगज्जन, चन्द्रावली, चन्द्रलेखा, तुङ्गदेवी- चम्पकलता, देवी, और इन्दुलेखा प्रभृति तारा-सखियों को देख पाया। लज्जा से सखीगण ील समुद्र (१) में निमज्जित हुयीं किन्तु पयट्ट-प्रयाम। रूप छिपा नहीं"!

इस रूपक में सूर्य श्रीकृष्ण कदम्ब कदम्बवृक्ष, तारागण गोपी, सूर्यकिरण स्त्र, नील अन्तरिक्ष, कालिन्दी-जल, महर्षिगणर्पित इस सुधामय रूपक स मे जो विषमय फल धारण किया है, इस को देख कर महर्षिगण आत्म- लानि से दग्ध प्रायः हो गये। रासलीला भङ्ग हुयी। श्रीकृष्ण व्रज (अयन- मण्डल) में चले। सम्मुख में अनुराधा नक्षत्र हैं। भान्त आर्यकुल! जो ज्योतिष- ास्त्र तुम्हारे शयन में, स्वप्न में, उत्सव में, व्यसन में, शोक में, सुख में, समाज , विजन में, पाप में, पुण्य में, सहाय होता था, आज तुम लोग उसी ज्यो- तिषशास्त्र को भूल कर श्रीराधाकृष्ण के आह्लीन रासलीला के अस्तित्व में विश्वास करते हो!!! कहां श्रीकृष्ण! कहां राधा! पृथिवी के करोड़ों योजन से अधिक दूरी पर सूर्य, उस से लक्ष २ गुण योजन अन्तर पर राशिचक्र के नक्षत्र श्रीराधा आदि अवस्थित, दुर्दशामें पड़ने से इतना मोह पैदा होताहै। अादि काल आदित्यदेव श्रीकृष्ण का राशिचक्र ही "सुदर्शनचक्र" है। चक्री के उस चक्र के किरण जाल में आच्छन्न हो आर्यसन्तति, पुरस्थित प्राकृतिक रासलीला को देखनेमें असमर्थ होरहीहै। रूपक रक्षाके अनुरोध से, श्रीकृष्ण की रासलीला वर्णन में पुराणकार महर्षियों ने कौतुक च्छल से कुसुम में कवि-

(१) [illegible] का नाम है। ऋग्वेद १०।१८।६—१२

पद दो २ अर्थवाले शब्दों का भी प्रयोग किया है। इ
शास्त्र के पाठ और ज्योतिषशास्त्र के अनुशीलन में
पर्य्यवेक्षण (Observation) से भारतीय आर्यजा
प्रणीत पुराशास्त्र इन गद्य दो अर्थ वाले शब्दों के प्र
अर्थ हो गया, और महर्षिगण पूजित आदित्य देव
प्रकृतदेव श्रीहरि को भूल कर आर्य्यजाति अपने की
को भूल कर इधर उधर भटकती फिरती है। क्या
है! क्या भयावह विभ्राट भारत में उपस्थित हुआ
कौन पण्डित वेद का अर्थ कर सकता? मीमांसा द
छोड़ कर, कौन सुशिक्षित सुधीजन पुराण की व
भ्रम प्रमाद में पड़कर भारत माता के हृदय से आप
भक्ति स्थापन करने से पराङ्मुख होकर, शिक्षित क
कोई भी नवद्वीप में मानव-ईश्वर स्थापन में भक्ति
हैं। आर्यगण! एकवार आलस्य छोड़ कर नदान, प
परीक्षा करो तो वेदोक्त श्रीकृष्ण (श्रीविष्णु) के परि
कर सकोगे। खेद-दग्ध हो कर आर्य्यजाति को नि
नत मस्तक में, देश २ में, विदेश में, नगर नगर में, ग
में, घाट २ पर, श्रीकृष्णकी कलङ्क रटना और व्यङ्ग
इसी खेद से हम लोगों ने आज पुराण के रूपक
डाला है। नहीं तो ऐसी मनोरम अपूर्व मरीचिका
की प्रवृत्ति हो सकती? अब इस के आगे सिद्धान्त
के विषय संक्षिप्त विचार किया जायेगा और अन्या
शोक्त व्याख्यानों का वर्णन-सिद्धान्त शिरोमणि के
लिया जायेगा।

सिद्धान्तज्योतिषग्रन्थ ॥

भारतवासियो! आप वेद और धर्मशास्त्र अध्ययन करते हैं, वा वेद और धर्मशास्त्र अध्ययनार्थ तैयार हैं; परन्तु आप जानते हैं! यह क्या लिखा है-

"द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च ।
तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति" ॥ मुण्डक उ० १ । १ । ४, ५ ॥

अर्थात्-विद्या दो प्रकार की है, एक परा दूसरी अपरा । इन में ऋग्वेद यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त एवं ज्योतिष अपरा विद्या है । और जिस विद्या से अक्षर ब्रह्म का ज्ञान हो उसे परा विद्या कहते। न में से शिक्षा आदि वेदरूपी पुरुष के छः अङ्ग स्वरूप हैं जैसा कि कहा है-

"शब्द शास्त्रं मुखं ज्योतिषं चक्षुषी, श्रोत्रमुक्तं निरुक्तञ्च कल्पः करौ ।
या तु शिक्षाऽस्य वेदस्य सा नासिका, पादपद्मद्वयं छन्द आद्यैर्बुधैः" ॥१८॥

अर्थात्-वेदरूपी पुरुष के व्याकरण तो मुख, ज्योतिष नेत्र, शिक्षा नासिका, कल्प दोनों हाथ और छन्दः (शास्त्र) पैर हैं । क्या बिना नेत्र के वेद पुरुष को अन्धे रक्खेंगे एवं आप भी नेत्र हीन हो वेद के ज्योतिष सम्बन्धि गूढ़ मर्म्मों का उटपटाङ्ग अर्वाचीन अर्थ कर आर्यों का प्राचीन गौरव नष्ट करेंगे ?

ज्योतिष शास्त्र कहने से-यह न समझ लीजिये कि केवल फलित की चर्चा ही को ज्योतिष कहते किन्तु संहिता, जातक आदि और सिद्धान्त मिल कर ज्योतिष कहाता है। यह बात हम ही नहीं कहते किन्तु जगत् विख्यात पं० बापूदेव शास्त्री जी की बनाई हमारे सू० सि० की भूमिकामें पढ़ लीजिये । और महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी जी अपने " गणक तरङ्गिणी " नामक ग्रन्थ में जिस में सिद्धान्त ज्योतिषियों का इतिहास लिखा है। लिखते हैं कि-

" आधुनिका ज्योतिर्विदः फलमात्रवेदिनः "

व्याकरण शास्त्र मत्ताइव लघुपाराशरीजातकबोधशीघ्रबोधमुहूर्तचिन्ता-मणिनीलकण्ठीबृहज्जातकमितिनिमूलालोकदेशेन मना आत्मानं इव इत्थं-ज्योतिषशास्त्रपारङ्गतमन्यन्ते। तत्र सहस्रेषु महाराष्ट्रादिदेशेषु पारम्परासु मतस्थ लिख्यानुपपत्ति विज्ञानाभावाद्वा परतः श्रुत्वा या मेनि सर्वदग्रन्थेषु लिखितं विषयाद्वा ऽस्मदुपदिष्टं कुर्वन्ति" । गणकतरङ्गिण्याम्" पृ० १३२ ॥

अर्थात्-आज कल प्रायः लोग, छोटे से छोटे २ फलित ज्योतिष के ग्रन्थ शीघ्र बोध, मुहूर्तचिन्तामणि आदि पढ़ २ कर अपने को ज्योतिषी मान बैठते और

तिथिपत्र बना २ कर अपनी प्रसिद्धि करते हैं और वास्तविक ज्योति सिद्धान्त संहिता के ग्रन्थ नहीं पढ़ते इत्यादि । कतिपय ग्रन्थों में ज्योति शास्त्र के पांच भेद लिखे हैं जैसा कि–

पञ्चस्कन्धमिदंशास्त्रं होरागणितसंहिता" ।
केरलिशकुनश्चैव प्रवदन्तिमनीषिणः ॥ प्रश्नरत्नटीकाकारः ।

अर्थात्–ज्योतिषशास्त्र पांच प्रकार का है, १ होरा, २ गणित, ३ संहि ४ केरलि एवं ५ शकुन । इसी प्रकार पूर्वोक्त म० म० पं० सुधाकर जी ने उ ग्रन्थ के आरम्भ में लिखा है कि–"अस्ति सिद्धान्तहोरासंहितारूपं स्कन्ध यात्मकमष्टादशमहर्षिप्रणीतं ज्योतिःशास्त्रं वेदचक्षुरूपं परम्परातः प्रसिद्ध अष्टादशमहर्षयश्च ज्योतिःशास्त्र प्रतिपादका ये तेषां नामानि प्रकाशितानि । अत्र पुलस्त्य पौलिशयोर्भेदेन पराशरेण ज्योतिःशास्त्रप्रवर्त्तका एकोन शति संख्याका आचार्य्या अभिहिताः । केचनाष्टादशाचार्य्यानुरोधेन पुलस्त्य मनुविशेषणपरइति वदन्ति । नारदेन तु सूर्यं हित्वा सप्तदशाचार्या एव स हितायां प्रकाशिताः । तत्रापि ब्रह्माचार्यो वसिष्ठोऽत्रिरित्यादौ ब्रह्मसूर्यौ व ष्ठोऽत्रिरित्यनेपाठं वदन्ति ।

अथाहो एते संहिताकारा महात्मनो लगधस्य न कुर्व्वन्ति चर्चाम् । महात्मना वेदाङ्गमूलरूपं ज्यौतिषं पञ्चवर्षयुगवर्णनं परं विलक्षणं चक्रे ।

सूर्येण मयासुरकृते ब्रह्मणा नारदाय व्यासेन स्वशिष्याय वसिष्ठ माण्डव्यवामदेवाभ्यां पाराशरेण मैत्रेयाय पुलस्त्याचार्यो गर्गात्रिभिश्चैवं स्व शिष्येभ्यो ज्योतिःशास्त्र विशेषाः प्रतिपादिताः । तथाचाह पराशरः ।

"नारदाय यथा ब्रह्मा, शौनकाय सुधाकरः ।
माण्डव्यवामदेवाभ्याम्, वसिष्ठोयत्पुरातनम् ॥
नारायणो वसिष्ठाय, रामेशायापिचोक्तवान् ।
व्यासःशिष्याय सूर्योऽपि, मयासुरकृतेस्फुटम् ॥
पुलस्त्याचार्य्यगर्गात्रि, रोमकादिभिरीरितम् ।
विप्रस्वता महर्षीणाम्, स्वयमेव युगेयुगे ॥
मैत्रेयाय मयाप्युक्तम्, गुह्यमध्यात्मसंज्ञकम् ।
शास्त्रमाद्यं तदेवेदम्, लोकेयद्यापि दुर्लभम् ॥

(१)–"सूर्यः [illegible] वसिष्ठो[illegible] । [illegible] मरीचिर्मनुरङ्गिराः ॥ [illegible] भृगुः । शौनको[illegible] ज्योतिःशास्त्रप्रवर्त्तकाः ॥ [illegible] पराशर. । [illegible], गुर्ग [illegible] कश्यपो भृगुः ॥ [illegible] प्रवर्त्तकाः ॥"

अथैतेषामाचार्याणां समयादिनिरूपणं तत्तद्रचितसिद्धान्तानामलाभेऽतीव
ठिन्यमतोऽस्माभिस्तावज्ज्योतिषसिद्धान्तग्रन्थकारपुरुषका णामुत्तरोत्तरं ख-
प्रतिखण्डनद्वारेण बहुविशेषरचयितॄणां यावच्छक्यं तत्तद्ग्रन्थमर्मस्थलानां
गवलोकनेन समयादिकं निरूप्यते ॥

उपरोक्त संस्कृत का आशय–नीचे लिखे सिद्धान्तज्योतिष के ग्रन्थों के
र तो पाये जाते हैं पर ये ग्रन्थ नहीं मिलते अतएव ये ग्रन्थ कब २ बने
का पता लगाना कठिन है ॥

सिद्धान्त ज्योतिष ग्रन्थों के नाम ॥

ग्रन्थ नाम ।	ग्रन्थ नाम ।	ग्रन्थ नाम ।	ग्रन्थ नाम ।
१ ब्रह्मसिद्धान्त ।	६ मनुसिद्धान्त ।	११ पुलस्त्यसिद्धान्त ।	१६ च्यवनसिद्धान्त
२ मरीचिसिद्धान्त ।	७ अङ्गिरासिद्धान्त ।	१२ वसिष्ठसिद्धान्त ।	१७ गर्गसिद्धान्त ।
३ नारदसिद्धान्त ।	८ वृहस्पतिसिद्धान्त ।	१३ पराशरसिद्धान्त ।	१८ पुलिससिद्धान्त ।
४ कश्यपसिद्धान्त ।	९ अत्रिसिद्धान्त ।	१४ व्याससिद्धान्त ।	१९ लोमशसिद्धान्त ।
५ सूर्य्यसिद्धान्त ।	१० सोमसिद्धान्त ।	१५ भृगुसिद्धान्त ।	२० यवनसिद्धान्त ।

आधुनिक पौरुष ज्योतिष ग्रन्थ ॥

ग्रन्थ नाम ।	ग्रन्थ कर्त्ता	ग्रन्थनिर्माणकाल	स्थान
आर्य्यभटीय ।	पं० आर्यभट	४२३ शाके	पटना
पञ्चसिद्धान्तिका ।	पं० वराहमिहिर	४२७ ,,	कालपी
ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त ।	पं० ब्रह्मगुप्त	५२० ,,	भीलमाल (दक्षिणपश्चिमोत्तर)
द्वितीयआर्यसिद्धान्त ।	द्वितीयआर्यभट्ट	८७५ ,,	——
सिद्धान्त शिरोमणि ।	पं० भास्कराचार्य्य	१०७२ ,,	दौलताबाद
सिद्धान्तसार्वभौम ।	पं० मुनीश्वर	१५२५ ,,	एलचपुर
तत्वविवेक ।	पं० कमलाकर भट्ट	१५८० ,,	विदर्भ

आर्यभटीय ॥

उपलब्ध पौरुष ज्योतिष ग्रन्थों में सब से पुराना–" आर्यभटीय " है।
ार्यभट नामक ज्योतिषी ने आर्याछन्द के १२० श्लोकों में इस ग्रन्थ को शाके
२३ में–स्थान कुसुम पुर (बिहार प्रान्त के अन्तर्गत पाटलिपुत्र या पटना)
बनाया और इस ग्रन्थ का नाम "आर्यभटीय" रक्खा। लोग इसे "आर्य-
सिद्धान्त," "लघु आर्यसिद्धान्त" या "प्रथमार्य–सिद्धान्त" भी कहते हैं। आर्य-
ट स्वयं अपने जन्मस्थान एवं ग्रन्थ निर्माणकाल के विषयमें यों लिखते हैं कि—

" ब्रह्म कु शशिबुधभृगुरविकुजगुरुकोणभगणान्नमस्कृत्य ।
आर्य्यभटस्त्विह निगदति कुसुम पुरेऽभ्यर्चितं ज्ञानम्॥१॥आ०भ०गी०२१श्लो०
भा०:–पृथिवी, चन्द्रमा, बुध, शुक्र, आदि अभिहित परब्रह्म को नम-

स्कार कर आर्यभट इस 'कुसुम पुर' (पटना) के लोगों से समादृत आर्यभ
ग्रन्थ को कहते हैं ॥ १ ॥ पुनः—

"षष्ट्यब्दानां षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः ।

त्र्यधिका विंशतिरब्दास्तदेह मम जन्मनोऽतीताः ॥ आ०भ०गी०३श्लो०

भा०:—इस वर्त्तमान २८ वीं चौयुगी के चतुर्थ भाग में से तीसरे भाग
६० वर्ष वीतने पर मेरा (आर्यभट का) जन्म हुआ । और मेरे जन्म
से अब तक २३ वर्ष वीत गयीं । वर्त्तमान महायुग के चतुर्थपाद के ३६००
वर्ष वीतने पर मेरी उमर २३ वर्ष की हुई । इसी समय मैं ने इस ग्रन्थ
रचा ॥ १० ॥ पुनः आर्यभट ने यह भी लिखा है कि मैं ने यह ग्रन्थ प्राचीन
वैदिक ज्योतिष के अनुसार ही बनाया है—इसे नवीन रचना समझ कर
इस की निन्दा न करेः—

" सदसज्ज्ञान समुद्रात् समुद्धृत देवताप्रसादेन ।

सज्ज्ञानोत्तमरत्नं मया निमग्नं स्वमति नावा ॥" आ०भ०गी०४९श्लो०४९

भा०:—ज्योतिषशास्त्ररूपी समुद्र में अपनी बुद्धिरूपी नौका पर सवार
समुद्र में निमग्न होकर ब्रह्मा (ब्रह्मकृत वेदाङ्ग ज्योतिष) की कृपा से
रूप रत्न को मैं ने (आर्यभट ने) बाहर किया अर्थात् प्रकाशित किया॥४९॥पुन

" आर्यभटीयं नाम्ना पूर्वं स्वायम्भुवं सदा सद्यत् ।

सुकृतायुषोः प्रणाशं कुरुते प्रति कञ्चुकं योऽस्य ॥ आ०भ०गी०४श्लो०५०

भा०:—आदि काल में [illegible] ज्योतिषशास्त्र को वेद से निकाल कर
मैं—प्रचार किया गया उसी ज्योतिषशास्त्र को अर्थात् वैदिक ज्योतिषशास्त्र
मैं ने (आर्यभट ने) "आर्यभटीय" नाम से प्रकाशित किया । इस शास्त्र
को कोई व्यक्ति मिथ्या दोष दिखलाकर इस का तिरस्कार करेगा—उस
पुरुष के पुण्य का यश एवं आयु का नाश होगा ॥ ५० ॥

इस "आर्यभटीय" में दो मुख्य भाग हैं और १०८ आर्या छन्द के श्लोक
[illegible] कोई २ इस को "आर्याष्टशत" भी कहते हैं, इन दो भागों को कोई
टीका-[illegible] दो [illegible] मानते हैं—[illegible] कि—इस के टीकाकारों में
[illegible] टीकाकार ने—इन भागों को दो प्रबन्ध मानकर प्रत्येक की आदि
[illegible] किया है [illegible] इन दो भाग
[illegible] परन्तु [illegible] मालूम होता है कि [illegible]
[illegible] एक बार छोड़ दिया गया
[illegible]
[illegible]

नहीं रक्खा है और न उस के अन्त में उपसंहार ही किया है, एकत्र पूरे दोनों भागों का) ग्रन्थ के अन्त में ही उपसंहार किया है और "आर्यभटीय" ऐसा नाम रक्खा है। इसीप्रकार ग्रन्थकार ने ग्रन्थ भर में चार पाद रक्खे हैं पाद का अर्थ चौथा भाग है और चतुर्थ भाग किसी पूरे १६ अंशों की वस्तु में होता है-अतएव प्रथम पाद के पूर्व दो श्लोक, प्रथम पाद में १० श्लो०, द्वितीय में ३३ श्लो०, तृतीय पाद में २५ और चतुर्थ में ५०, यों सब मिल कर १२० श्लोक हैं। परन्तु "आर्याष्टशत" इस लेख को देख कर बहुतसे यूरोपियन विद्वानों ने भ्रम से इस ग्रन्थ में ८०० श्लोकों का होना माना है। जो श्रीमान् डाक्टर करन साहब के-सन् १८७४ ई० के छप वाये संस्कृत टीकासहित आर्यभटीय के देखने से पाश्चात्य विद्वानों का ८०० आर्या श्लो० होने का भ्रम दूर हुआ। आर्यसिद्धान्त नाम से एक दूसरा भी ज्योतिष ग्रन्थ-प्रसिद्ध है-उस पर विचार किया जाता है।

द्वितीय आर्य्यसिद्धान्त ॥

द्वितीय आर्यभट शाक ८७५ में हुए " प्रथम आर्यभट " के अतिरिक्त यह एक द्वितीय "आर्यभट" नवीन हुए, अतएव इन्हें "द्वितीयआर्यभट" और इन के ग्रन्थ को " द्वितीयआर्यसिद्धान्त " कहते हैं। पूना के " दक्षिण-कालिज " में " द्वितीय आर्यसिद्धान्त की एक प्रति है जिस पर " लघुआर्य-सिद्धान्त " लिखा है, परन्तु स्वय ग्रन्थकार ने अपने ग्रन्थ में ग्रन्थ का नाम "लघु" या "वृहत्" कुछ भी नहीं लिखा है। इस ग्रन्थ के पहिली " आर्या " (छन्द) में लिखा है कि—

" विधि च खगागम पाटी कुट्टक बीजादि दृष्टशास्त्रेण।

आर्यभटेन क्रियते सिद्धान्तो रुचिर आर्याभिः " ॥

भाः-इन ने अपने ग्रन्थ को "सिद्धान्त" ऐसा लिखा है इन के पूर्व के " आर्यभट " से यह नवीन हैं, (जो आगे सिद्ध होगा) इसलिये इन को "द्वितीय आर्यभट" और इन के सिद्धान्त को "द्वितीय आर्यसिद्धान्त" कहते हैं। इन ने अपना ग्रन्थ निर्माण या जन्मकाल के विषय में कुछ नहीं लिखा है। किन्तु " पराशरसिद्धान्त " ग्रन्थ का मध्यम मान दिया है इससे इन ने दोनों सिद्धान्त ग्रन्थों का उल्लेख किया है।

"एतत् सिद्धान्तद्वयमीषद्याते कलौ युगे जातम्" ॥ २ ॥ अध्याय २ ॥

इस के अनुसार कलियुग के थोड़े ही समय बीतने पर ये दोनों सिद्धान्त रचे गये ऐसा दिखलाने का-इस का उद्देश्य है।

परन्तु ब्रह्मगुप्त के अनन्तर यह ग्रन्थ रचा गया ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता
इस का कारण यह है कि यह अपने सिद्धान्त को कलियुग के आरम्भ ही
बनना बतलाते हैं, इस से अपने ग्रन्थ को पौरुष ग्रन्थकारों में गण
करते हैं। ब्रह्म गुप्त के पहिले इन के ग्रन्थोल्लिखित वर्तमान था, अन्य
मानों का वस्तुतः कहीं प्रचार होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता।
ब्रह्म गुप्त ने अपने ग्रन्थ में आर्यभट–के दूषणों को सब से पहिले दिखल
है। इस से ब्रह्मगुप्त के पहिले प्रथम–आर्यभट हुए यह सिद्ध होता
द्वितीय आर्यभट के सिद्धान्त के किसी विषय का उल्लेख ब्रह्मगुप्त ने
किया, यदि द्वितीय–आर्यभटग्रन्थ उस समय या उससे पहिले बना ह
तो अवश्य इस का भी उल्लेख ब्रह्मगुप्त करते। " पञ्चसिद्धान्तिका " (
शाके ४२७ का बना है) में अय .गति का उल्लेख कुछ भी नहीं दीखता। प
आर्यभट, ब्रह्मगुप्त, लल्ल, इन के ग्रन्थों में अयनगति का वर्णन नहीं है
इस द्वितीय आर्यसिद्धान्त में इसकावर्णन है। अधिक क्या कहा जावे-प्रथम आर
के जो २ दूषण ब्रह्मगुप्त ने दिखलाये हैं, उस २ के उद्धार का यत्न, द्वि
आर्यभट ने किया है। इन के ग्रन्थ में युगपद्धति (सत, त्रेता, द्वापर, क
है, कल्प का आरम्भ रविवार को माना है, और पहिला आ०
में युग के आरम्भ में मध्यमग्रह एकत्र रहते, स्पष्टग्रह एकत्र नहीं रहते
लिखा है। इसका खण्डन ब्रह्मगुप्त ने किया है (अ० २। आर्या ४६) प
द्वितीय आर्यभट के प्रमाण से सृष्टि के आरम्भ में स्पष्ट ग्रह एकत्र होते हैं
सब प्रमाणों से ब्रह्मगुप्त के अनन्तर अर्थात् शाके ५८७ के अनन्तर २रे आ० भ
यह उस समय का प्राचीन सिद्धान्त माना जाता और अर्वाचीन सिद्धान्त
से पहिले आर्यकुलभूषण पं० भास्करा चार्य ने रचा। सिद्धान्त शिरोमणि
स्पष्टाधिकार के ६५ वें श्लोक में लिखा है कि " आर्यभटादिभिः सूक्ष्म
दृक्क्षेपोदयाः पठिताः " दृक्क्षेप अर्थात् राशि का तीसरा अंश (१० अंश
प्रथम आर्यभट ने लग्नमान को तीस २ अंशों में किया है। दश २ अंशों
नहीं। परन्तु द्वितीय आ० भ० ने अ० ४ आर्या ३८–४० में दृकोणोदय (
मान) कहा है। इस प्रमाण से दृकोणोदय साम्प्रत द्वितीय आर्यभट को
अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं लिखा है। इस के अनुसार भास्कराचार्य के
वाक्यानुसार आ० भ० पहिला नहीं, किन्तु द्वितीय आ० सि० ही सिद्ध होत
जिस के अनुसार शाके १०७२ के पूर्व द्वितीय आर्यभट थे, ऐसा निश्चय है
है। द्वितीय आ० भ० ने अयनांश निकालने की रीति दिखी है, इस के

सार अयनगति एकसी नहीं रहती वरन उस में बहुत न्यूनाधिक्य होता है। परन्तु अयन गति सर्वदा एकसी रहती–ऐसा मानने पर भी इसकी सूक्ष्म गति मानी जाती है जिससे उस में बहुत थोड़ा अन्तर पड़ता है। आधुनिक सूर्य–सिद्धान्तोक्त अयनगति सब काल में एकसी रहती है परन्तु इस का काल ज्ञात नहीं ऐसा लिखा है।

" राजमृगांक " ग्रन्थ में (शाके ९६४) अयनगति सब काल में एकसी रहती है ऐसा लिखा है। इस ग्रन्थ को पूर्व के बने ग्रन्थों में इस विषय के होने का प्रमाण अब तक नहीं मिला है। इस के अनुसार अयनगति का ज्ञान (बराबर) होने के पहिले द्वि० आ० भ० भटोत्पल के टीका में लिखा है। परन्तु दूसरे आ० भ० में ऐसा नहीं लिखा है जिस से द्वितीय आर्यभट भटोत्पल के पहिले थे ऐसा निश्चय होता है।

उपरोक्त प्रमाणों से द्वि० आ० भटोक्त मेष संक्रमण काल के उल्लेखानुसार–द्वितीय आर्यभट का समय ८७५–सिद्ध होता है।

इस द्वितीय आर्यसिद्धान्त में १८ अधिकार और ६२५ आर्या छन्द के श्लोक हैं। प्रथम १३ अध्यायों में करण ग्रन्थ के निराले २ अधिकारों का वर्णन है, चौदहवें में गोल सम्बन्ध विचार एवं प्रश्न हैं, १५ वें में १२० आर्या श्लो० में अङ्क गणित एवं क्षेत्रफल, घनफल का वर्णन है, १६ वें में भुवन कोश का वर्णन है, १७ वें में ग्रह मध्य की उपपत्ति इत्यादि हैं और १८ वें में बीजगणित, कुट्टक गणित हैं। इस में ब्रह्म गुप्त के ब्र० सि० से भी अधिक विषय हैं। इन ने संख्या दिख लाने का क्रम प्रथम आर्यभट से भी विलक्षण ही दिया है जैसा कि—

वर्ण	वर्णबोधितसंख्या	वर्ण—	संख्या
क, ट, प, य,=	१	च, त, ष=	६
ख, ठ, फ, र=	२	छ, थ, स=	७
ग, ड, ब, ल=	३	ज, द, ह=	८
घ, ढ, भ, व=	४	झ, ध=	९
ङ, ण, म, श=	५	ञ, न=	०

"अङ्कानां वामतो गतिः" यह नियम प्रथम आर्यभट ने नहीं लिखा है। हम ने यहां "द्वितीयआर्यभट" के समय आदि का विचार इस लिये किया है कि जिस से पाठकों को यह भ्रम न हो कि दोनों आर्यभटीय ग्रन्थों में दूराना कौनसा है–एवं दोनों ग्रन्थ एक ही ग्रन्थकार द्वारा बने या भिन्न २ द्वारा

[स]ार अयनगति एकसी नहीं रहती वरन उस में बहुत न्यूनाधिक्य होता है। [प]रन्तु अयन गति सर्वदा एकसी रहती—ऐसा मानने पर भी इसकी सूक्ष्म [ग]ति मानी जाती है जिससे उस में बहुत थोड़ा अन्तर पड़ता है। आधुनिक [सू]र्य-सिद्धान्तोक्त अयनगति सब काल में एकसी रहती है परन्तु इस का [क]ाल ज्ञात नहीं ऐसा लिखा है।

"राजमृगांक" ग्रन्थ में (शाके ९६४) अयनगति सब काल में एकसी [र]हती है ऐसा लिखा है। इस ग्रन्थ को पूर्व के बने ग्रन्थों में इस विषय के [ह]ोने का प्रमाण अब तक नहीं मिला है। इस के अनुसार अयनगति का [म]ान (बराबर) होने के पहिले द्वि० आ० भ० भटोत्पल के टीका में लिखा [है]। परन्तु दूसरे आ० भ० में ऐसा नहीं लिखा है जिस से द्वितीय आर्यभट [भ]टोत्पल के पहिले थे ऐसा निश्चय होता है।

उपरोक्त प्रमाणों से द्वि० आ० भटोक्त मेष संक्रमण काल के उल्लेखानु-[स]ार—द्वितीय आर्यभट का समय ८७५—सिद्ध होता है।

इस द्वितीय आर्यसिद्धान्त में १८ अधिकार और ६२५ आर्या छन्द के श्लोक [ह]ैं। प्रथम १३ अध्यायों में करण ग्रन्थ के निराले २ अधिकारों का वर्णन है, [च]ौदहवें में गोल सम्बन्ध विचार एवं प्रश्न हैं, १५ वें में १२० आर्या श्लो० में [अ]ङ्क गणित एवं क्षेत्रफल, घनफल का वर्णन है, १६ वें में भुवनकोश का वर्णन है, [१]७ वें में ग्रह मध्य की उपपत्ति इत्यादि हैं और १८ वें में बीजगणित, कुट्टक [ग]णित हैं। इस में ब्रह्म गुप्त के ब्र० सि० से भी अधिक विषय हैं। इन ने संख्या [आ]दि लाने का क्रम प्रथम आर्यभट से भी विलक्षण ही दिया है जैसा कि—

वर्ण	वर्णबोधितसंख्या	वर्ण—	संख्या
क, ट, प, य,=	१	च, त, प=	६
ख, ठ, फ, र=	२	छ, थ, स=	७
ग, ड, ब, ल=	३	ज, द, ह=	८
घ, ढ, भ, व=	४	झ, ध=	९
ङ, ण, म, श=	५	ञ, न=	०

"अङ्कानां वामतो गतिः" यह नियम प्रथम आर्यभट ने नहीं लिखा है। हम ने यहां "द्वितीयआर्यभट" के समय आदि का विचार इस लिये किया है कि जिस से पाठकों को यह भ्रम न हो कि दोनों आर्यभटीय ग्रन्थों में पुराना कौनसा है—एवं दोनों ग्रन्थ एक ही ग्रन्थकार द्वारा बने या भिन्न २ द्वारा

इत्यादि। अब इस के आगे "प्रथम आर्यभटीय" का अनुवाद आरम्भ होता
हमारे देशके बहुतसे अमूल्य ग्रन्थ तो अङ्गरेजों से पहिले के आये हुए विधर्मियों
के उपद्रव आदि कारणों से नष्ट भ्रष्ट हुए, उन से बचे बचाये ग्रन्थ, देश
विद्या के शत्रुओं (मूर्ख) के पास सड़ते हैं और उनका प्रचार नहीं होता, इनसे ब
बचाये ग्रन्थ हमारे परम माननीय अङ्गरेजी गवर्नमेण्ट के सुप्रबन्ध से पु
कालयों तथा लन्दन, जर्म्मन आदि देशों में सुरक्षित हैं, परन्तु बड़े
की बात है कि जिन भारतवासियों के घर का रत्न समुद्र पार जावे
भङ्ग के तरङ्ग की गाढ़ निद्रा में कुम्भकरण की नाईं खर्राटे मार कर सोते।
और जगाने पर भी नहीं जगते—और इन्हीं अमूल्य ग्रन्थों का तर्जुमा वि
यत आदि से होकर आता है तो उसे बड़े चाव से देखते हैं।

हमने अपने देश के गौरव रक्षार्थ ज्योतिष के पुराने ग्रन्थ–
की एक प्रति जर्म्मन् देश से मंगवा कर पाठकों के अवलोकनार्थ सटीक सानु
प्रकाशित किया है। आशा है कि हमारे पाठकगण इस की एक २ प्र
मंगवा कर अपने स्वदेशीय रत्नोंका संचय कर हमारे परिश्रम को सफल करें

अनुवादक

आर्यभटीयस्य विषयानां सूचीपत्रम् ॥

विषय

॥ ओ३म् ॥

अथार्यभटीयं ज्योतिषशास्त्रम् ॥

"यत्तेजः प्रेरयेत् प्रज्ञां सर्वस्य शशिभूषणम् ।
मृगटङ्काभयेष्टाङ्कं त्रिनेत्रं तमुपास्महे ॥
लीलावती भास्करीयं लघु चान्यच्च मानसम् ।
व्याख्यातं शिष्यबोधार्थं येन भक्तेन साधुना ॥
तन्त्रस्यार्यभटीयस्य व्याख्याल्पा क्रियते मया ।
परमादीश्वराख्येन नाम्नात्र भटदीपिका ॥"

तत्रायमाचार्य आर्यभटो विघ्नोपशमनार्थं स्वेष्टदेवतानमस्कारं प्रतिपाद्यवस्तुकथनञ्चार्यारूपया करोति ॥

प्रणिपत्यैकमनेकं कं सत्यां देवतां परं ब्रह्म ।
आर्यभटस्त्रीणि गदति गणितं कालक्रियां गोलम् ॥

इति ॥ कं ब्रह्माणं एकं कारणरूपेणैकं अनेकं कार्यरूपेणानेकं सत्यां देवतां स एव देवता। स्वयम्भूरेव पारमार्थिको देव अन्ये तेन सृष्टा इत्यपारमार्थिकाः। परब्रह्म जगतो मूलकारणं त्रिमूर्त्यतीतं सर्वव्याप्तं ब्रह्म स्वयम्भूरित्युक्तो भवति । आर्यभट एवं ब्रह्माणं प्रणिपत्य गणितं कालक्रियां गोलम्—इत्येतानि त्रीणि वस्तूनि निगदति । परोक्षत्वेन निर्देशान्निगदतीति वचनम्। तत्र गणितन्नाम सङ्कलितमिश्रश्रेढीदृग्धीकुट्टाकारच्छायात्रैराशिकाद्यनेकविधम् । इह तु कालक्रियागोलयोर्यावन्मात्रं परिकरभूतं तावन्मात्रं सामान्यगणितमेव प्रायशः प्रतिपादितम् । अन्यच्च किञ्चित्। कालस्य क्रिया कालक्रिया । कालपरिच्छेदोपायभूतं ग्रहगणितं कालक्रियेत्यर्थः । गोलन्नाम ब्रह्माण्डकटाहमध्यवर्त्याकाशमध्यस्थं ग्रहनक्षत्रकक्ष्यात्मकं स्वमध्यस्थघनवृत्तभूमिकमपक्रमाद्यशेषविशेषोपेतं प्रवाहाख्यवायुप्रेरितं कालचक्रज्योतिश्चक्रभपञ्जरादिशब्दवाच्यं गोलः । स च

वृत्तक्षेत्रत्याद्युरश्राद्यनेकक्षेत्रकल्पनाधारत्वाच्च गणितविशेषगोचर
यमपि द्विविधम्। उपदेशमात्रायमेयन्तन्मूलन्यायायत्तेयञ्चेति । त
मन्दोच्चादिवृत्ताद्युपक्रमाद्युपदेशमात्रायत्तेयम् इष्टदिनग्रहगतीष्टाप
अपरदलादिच्छायानाडिकाद्युपदेशसिद्धयुगवमाणादितो न्यायायत्त
विध्यम ॥ अत्र स्वयम्भूप्रणामकरणेन करिष्यमाणस्य तन्त्रस्य
मूलमिति च प्रदर्शितम् ॥

अथोपदेशावगम्यान्युगभगणादीन् सङ्क्षेपेण प्रदर्शयितुं दशगी
रिष्यन् तदुपयोगिनीं परिभाषामाह ॥

भा०:–अनेक देवताओं में परमश्रेष्ठ ब्रह्मा–जगत् स्रष्टा (
देवों को रचा) को प्रणाम कर आर्यभट (ग्रन्थकार) ' गणित ,
और ' गोल विद्या ' इन तीन वस्तुओं को वर्णन करते हैं ॥

वर्गाक्षराणिवर्गेऽवर्गे ऽवर्गाक्षराणि कात् ङ्मौ
खद्विनवके स्वरा नव वर्गेऽवर्गे नवान्त्यवर्गे

वृति=वर्गाक्षराणि वर्गे। ककारादीनि मकारान्तानि वर्गाक्ष
वर्गस्थाने एकशतायुताद्योजस्थाने स्थाप्यानि । एवं क्रमेण संख्या
वर्गे अवर्गाक्षराणि । यकारादीनि अवर्गाक्षराणि । तान्यवर्गस्थाने
दशादियुग्मस्थाने स्थाप्यानि । कात् ककारादारभ्य संख्या वे
एकसंख्यः खकारो द्विसंख्य एवं क्रमेण संख्या वेद्या । ञकारो दशसं
एकादशसंख्यः । नकारो विंशतिसंख्यः । मकारः पञ्चविंशतिसंख्यः
पिपाठक्रमेण संख्या वेद्या ॥ ङ्मौ यः । ङकारमकारयोर्योगेन तुल
पञ्चसंख्यायाः पञ्चविंशतिसंख्यायाश्च योगस्त्रिंशत्संख्य इत्यर्थः ।
स्थानमङ्गीकृत्य त्रिंशदित्युक्तं नतु द्वितीयस्थानमङ्गीकृत्य । द्विती
त्रिसंख्यो यकारः । इत्युक्तं भवति । रेफादयः क्रमेण द्वितीयस्था
संख्यास्युः।हकारो द्वितीयस्थान दशसंख्यः शतसंख्यावाचक इत्य
वर्गस्थानविहितापि हकारसंख्या संख्यान्तरत्वेन वर्गस्थाने स्थाप्य
कारादिसंख्या वर्गस्थानविहिताप्यवर्गस्थाने संख्यान्तरत्वेन स्थाप्य
न्यायतसिद्धम्। त्रिंशत्तुल्यो यकार इति वक्तव्ये ङ्मौ य इति वर्ण
त्रेन संयुक्तरप्यक्षरैसंख्या प्रतिपादयिष्यत इति प्रदर्शितं भवति ।
नामनङ्गीकृतसंख्याविशेषाणां के प्रयुज्यन्ते । इत्यत्राह । खद्विनवके

ऽवर्गे । इति । ङ्मिनवकेऽष्टादशके नव स्वराः क्रमेण प्रयुज्यन्ते । अ, इ,
ऋ, लृ ए,ऐ, ओ,औ । इत्येते नव स्वराः । एतदुक्तं भवति । ककाराद्यक्षर-
ास्स्वरास्स्थानप्रदर्शका भवन्ति न संख्याविशेषप्रदर्शका इति । कथं नव-
ा अष्टादशके प्रयुज्यते । इत्यत्राह । वर्गेऽवर्गे । इति । वर्गस्थानेषु न-
वकाराद्या नव स्वराः क्रमेण प्रयुज्यन्ते । तथा अवर्गस्थानेषु च त एव । ए-
न्यैरपि कल्प्यम् । तथा प्रथमस्वरयुतैर्ककारादिभिर्विहिता संख्या प्रथमे
वर्गस्थाने स्थाप्या । द्वितीयस्वरयुतैर्द्वितीये अवर्गस्थाने।एवमन्यैरपीति। ए-
मष्टादशस्थानेषु संख्या वेद्या।यदा पुनस्ततोऽधिकापि संख्या केनचिद्विवक्षि-
ा तदा कथमित्यत्राह। नवान्त्यवर्गे वा । इति । नवानां वर्गस्थानानामन्त्ये
र्ध्वगते वर्गस्थाननवके तथा नवानामवर्गस्थानानामन्त्ये ऊर्ध्वगते अवर्ग-
थाननवके च एते नव स्वराः प्रयुज्यन्ते वा । केनचिदनुस्वारादिविशेषेण
युक्ताः प्रयोज्या इत्यर्थः । शास्त्रव्यवहारस्त्वष्टादशस्थानानि नातिवर्तते ॥

अथ चतुर्युगे रव्यादीनां भगणसंख्यामाह ।

भा० –वर्ग के अक्षरों को (क, ख' ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ,ट, ठ, ड, ढ,
ा, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ,म,) वर्ग के स्थान में एक से अयुत तकको
विषम॰ स्थान में रखकर संख्या जाननी चाहिये । इसी प्रकार अवर्ग में
वर्ग के अक्षर जानना यकारादि (य, र, ल, व, श, ष, स, ह,) अवर्ग के स्था-
ा में दशसहस्र, लक्ष, आदि को"सम" स्थान में रक्खे। ककारसे लेकरसंख्या
जाननी अर्थात् क,से १, ख,से, २ ग,से ३ इत्यादि, म,से २५ इसप्रकार कको १ सं-
ख्या मानकर म पर्य्यन्तक्रमशः २५ संख्याहोगी। ङ, और म, इन दोनों कीसंख्या
का योग "य' की संख्याहै। प्रथम स्थान में य ३० का बोधक, द्वितीय स्थान
में ३ का, इसी प्रकार 'र' ४० का बोधक और द्वितीय स्थान में ४ का बोधक
है।हकारादि भी इसी प्रकार जानना। यहां ककारादि में जो अकारादि स्व-
र संयुक्त हैं वे संख्या प्रदर्शक नहीं हैं किन्तु स्थान प्रदर्शक हैं।अ, इ,उ, ए,ऐ,
ओ, औ, ऋ, लृ, ये नव स्वर हैं-तो १८ संख्या स्थानों में नवस्वर क्यों
कर रक्खे जायेंगे ? वर्ग स्थान में नव स्वर क्रम से प्रयुक्त होते हैं, उसी प्र-
कार अवर्ग स्थान में भी वेही नव स्वर हैं। इसी प्रकार औरों का भी जानना
प्रथम स्वर युक्त ककारादि द्वारा संख्या कही जावे-उस को पहिले वर्ग स्था-
न में, और द्वितीय स्वर युक्त को द्वितीय अवर्ग स्थान में रखनी । इसी प्र-

कार और भी १८ संख्या जाननी चाहियें। अगर १८ से अधिक संख्या होतो नियमसे जानना। परन्तु शास्त्रों में १८ संख्या से अधिक का व्यवहार है।

भा०:-निम्न लिखित चक्र में (अक्षर द्वारा जो इस सूत्र में संख्या का निर्देश हुआ है) गीतिका का अर्थ किया गया है।

संख्याज्ञापक चक्र।

अक्षर। संख्या।
अ=१
इ=१००
उ=१००००
ऋ=१००००००

अक्षर संख्या।
लृ=१००००००००
ए=१००००००००००
ओ=१००००००००००००००
औ=१००००००००००००००००

क=१	च=६	ट=११	त=१६	प=२१	य=३०	श=७०
ख=२	छ=७	ठ=१२	थ=१७	फ=२२	र=४०	ष=८०
ग=३	ज=८	ड=१३	द=१८	ब=२३	ल=५०	स=९०
घ=४	झ=९	ढ=१४	ध=१९	भ=२४	व=६०	
ङ=५	ञ=१०	ण=१५	न=२०	म=२५		

और नव स्वरों का योग, यदि वर्ग या अवर्ग अक्षरों के साथ हो तो वे १८ स्थानों के प्रदर्शक होते हैं। जैसेः-

क क्+अ=१
कि क्+इ=१००
कु क्+उ=१००००
कृ क्+ऋ=१००००००
कॢ क्+लृ=१००००००००
के क्+ए=१००००००००००
कै क्+ऐ=१००००००००००००
को क्+ओ=१००००००००००००००
कौ क्+औ=१००००००००००००००००
इसी प्रकार 'ख' का भी जानना।
ख ख्+अ=२
खि ख्+इ=२००
खु ख्+उ=२००००

इसी प्रकार और व्यञ्जनों का भी
य और य्+अ=३०
यि य्+इ=३०००
यु य्+उ=३०००००
इत्यादि।
और
र र्+अ=४०
रि र्+इ=४०००
रु र्+उ=४०००००० इत्यादि

इति संख्यापरिभाषा-समाप्ता।

ारविभगणाः ख्युघृ शशि चयगियिङुशुछ्लृकु ङिशिबुण्लृ-
ुप्राक्शनि ढुङ्विघ्व गुरु खिच्युभ कुज भद्लिझ्नुखृ भृगु-
य सौराः ॥१॥

टादशस्याजगतानां संख्यानां संज्ञा तुः-

„एकदशशतसहस्रायुतलक्षप्रयुतकोटयः क्रमशः।
अर्बुदमब्जं खर्वनिखर्वमहापद्मशङ्कवस्तस्मात् ॥
जलधिश्चान्त्यं मध्यं परार्द्धमिति दशगुणोत्तरं संज्ञाः"॥

यनेन वेद्या ॥ युगरविभगणाः। चतुर्युगे रवेर्भगणाः ख्युघृ इति। उकारयु-
खकारेणायुतद्वयमुक्तम्। उकारयुतयकारेण लक्षत्रयम्'एवं सर्वत्र हल्द्वये एक एव
र उभयत्र सम्बध्यते। ऋकारयुतघकारेण प्रयुतचतुष्कम्। एवमनेन न्यायेन
र्वत्र संख्या वेद्या ॥ शशि। शशिन इत्यर्थः। सूत्रे ह्यविभक्तिकोऽपि प्रयोग-
स्यात्। चयगियिङुशुछ्लृ इति युगभगणाश्शशिनः। च षट्। य त्रिंशत्। गि
शतम्। यि त्रिसहस्रम्। ङु अयुतपञ्चकम्। शु लक्षसप्तकम्। छृ प्रयुतसप्तकम्। लृ
ोटिपञ्चकम्। इति ॥ कु भूमेरित्यर्थः। ङिशिबुण्लृष्खृ इति भगणाः। प्राक्
ग्गत्या सम्भूता भगणा इत्यर्थः। ण्लृ पञ्चदशार्बुदम्। नवमस्थाने पञ्चदशम-
ाने एकञ्चेत्यर्थः। खृ प्रयुतद्वयम्। षृ कोट्यष्टकम्। भूमेर्यत्प्राङ् मुखंभ्रमणं
स्य चतुर्युगे संभूता संख्यात्रोक्ता। भूमिस्त्वचलेति प्रसिद्धा तस्याःकथमत्र भ्र-
णकथनम्। उच्यते। प्रवहाक्षेपात्पश्चिमाभिमुखं भ्रमतो नक्षत्रमण्डलस्य मि-
थ्याज्ञानवशाद्भूमेर्भ्रमणं प्रतीयते तदङ्गीकृत्येह भूमेर्भ्रमणमुक्तम्। वस्तुतस्तु
भूमेर्भ्रमणमस्ति। अतो नक्षत्रमण्डलस्य भ्रमणप्रदर्शनपरमत्र भूभ्रमणकथ-
मितिवेद्यम्। वक्ष्यति च मिथ्याज्ञानम्

अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानि भानि समपश्चिमगानि लङ्कायाम्॥

इति। अहोरात्रेण हि भगोलस्य समस्तभागभ्रमणादर्द्धं रवेर्दिनगतितुल्यभागो
ऽपि भ्रमति। अतो रवेर्युगभगणयुतभूदिवसैस्तुल्या नक्षत्रमण्डलस्य भ्रमणमि-
तिभवति। सैवात्रोक्ता स्यात् ॥ शनि ढुङ्विघ्व इति। शनेर्युगभगणाः। ढु-
अयुतानामष्टादश। ङि पञ्चशतम्। वि षट्सहस्रम्। घ चत्वारि। व षष्टिः॥

गुरु ख्रिच्युभ इति । गुरोर्भगणाः खि इति द्विशतम् ।
चु इत्ययुतषट्कम् । यु इति लक्षत्रयम्। भ इति चतुर्विंश
इति । कुजस्य भगणाः । भ चतुर्विंशतिः । दि अष्टशत
सहस्रम् । कु अयुतनवकम्। नु लक्षद्वयम्। खृ प्रयुतद्वयम्। अ
द्धि॥ भृगुबुध सौराः। भृगुबुधयोर्युगभगणास्सौरा एव। सू

एवं पृथक्सूत्रेण रव्यादीनां युगभगणान् प्रदर्श्य द्वि
गणान् बुधभृग्वोश्शीघ्रोच्चभगणांश्च शेषाणां कुजगुरुश
चन्द्रपातभगणांश्च भगणारम्भकालञ्चाह ।

चन्द्रोच्च र्जुष्खिध बुध सुगुशिथृन भृगु जप
बुफिनच पातविलोमा बुधान्ह्यजार्कोदयाच्च

चन्द्रोच्चस्य र्जुष्खिध इति भगणाः । र्जुष्खिध इति
ताष्टकम्। रु लक्षचतुष्कम् । षि अष्टसहस्रम्।खि द्विशत
बुधस्य शीघ्रोच्चभगणाः सुगुशिथृन इति। सु लक्षनवकम् ।
प्तसहस्रम्।थृ प्रयुतसप्तदशकम्।न विंशतिः॥ भृगोश्शीघ्रोच्च
ज अष्टौ। प अशीतिः। त्रिशतत्रयाधिकद्विसहस्रम् । खु अयु
कम्॥ शेषार्काः। शेषाणां कुजगुरुमन्दानां शीघ्रोच्चभगणा
एव। उपरिष्टादेषां मन्दोच्चांशान्वक्ष्यति । अत इहोक्त
सिध्यति॥ बुफिनच इति पातस्य चन्द्रपातस्य विलोमा
युतानां त्रयोविंशतिः । फि शतद्वयाधिकसहस्रद्वयम् । न
कुजादीनां पातभगणान्वक्ष्यति । अर्कस्य तु विक्षेपो न
चन्द्रपातस्य भगणा इति सिध्यति । उच्चपातानां व्योति
तथा च ब्रह्मगुप्तः—

प्रतिपादनार्थमुच्चाः प्रकल्पिता ग्रहगतेस्तथा

इति॥ बुधाह्न्यजार्कोदयाच्च लङ्कायाम् । कृतयुगादौ बु
दयमारभ्य । अजात् मेषादिमारभ्य राशिचक्रे गच्छतां
अर्थोक्ता इत्यर्थः।सूर्योदयो मध्यसूर्योदयः कल्पारम्भस्तु स्फु

ग्रहगण ।	युगीय भगणसंख्या ।
पृथिवी	१५८२२३७५००
सूर्य्य	४३२००००
चन्द्रमा	५७७५३३३६
बृहस्पति	३६४२२४
मङ्गल	२२९६८२४
शुक्र	४३२००००
बुध शीघ्रोच्च	१७९३७०२०
सायन दिन	१५७७९१७५००
चन्द्रोच्चभगण	४८८२१९
चन्द्रपातभगण	२३२२२६
बुधपातभगण	४३२००००
शुक्रशीघ्रोच्चभगण	७०२२३८८
शनिभगण	१४६५६४
सौर मास	५१८४००००
अधिमास	१५९३३३६
चान्द्रमास	५३४३३३३६
तिथि	१६०३००००८०
क्षयाह	२५०८२५८०

वर्षमान दिन ३६५ घ १५ प ३१ वि १५ ॥ १, २ ॥

काहोमनवो ढ मनुयुग श्ख गतास्ते च मनुयुग छ्ना च ।
कल्पादेर्युगपादा ग च गुरुदिवसाच्च भारतात्पूर्वम् ॥३॥

काहोमनवो ढ । क कस्य ब्रह्मणः । अहः अह्नि मनवो ढ चतुर्दश भवन्ति । मनुयुग श्ख । एकैकस्य मनोः काले युगानि चतुर्युगानि श्ख । श सप्ततिः । ख द्वयम् । द्वासप्ततिरित्यर्थः । गतास्ते च । एतस्माद्वर्तमानात्कलियुगात्पूर्वमतीतास्ते मनवः । च षट् । मनुयुग छ्ना च । वर्तमानस्य सप्तमस्य मनोः । अतीतानि चतुर्युगानि छ्ना । छ सप्त । ना विंशतिः । सप्तविंशतिरित्यर्थः । अथवा ह्रस्वदीर्घयोर्न विशेष । अकारः ह्रस्व एकाकारः छ चन्पा-

देयं गपादा ग च गुरुदिवसाश्च भारतात्पूर्वम्। युगपादा ग
विंशस्य चतुर्युगस्य ग पादाश्च । अयः पादाश्च । गता
त्रेऽनाद्य चकारत्रयं न समपामद्यंशकम्॥ कदा एवमित्यत्राह
दिवसात्पूर्वमिति । भारता युधिष्ठिरादयः । तैरुपलक्षिते
रुदिवसः । राज्य चरतां युधिष्ठिरादीनामन्त्यो गुरुदिव
इत्यर्थः । तस्मिन्दिने युधिष्ठिरादयो राज्यमुत्सृज्य महा
सिद्धिः । तस्माद्गुरुदिवसात्पूर्वं कल्पादेरारभ्य गता मन्व
र्थः। अस्मिन्पक्षे युगानि परस्परसमानि युगपादश्च चतु
था चेत् बुधवारादिके चतुर्युगे कलियुगारम्भश्शुक्रवारे न
तयुगारम्भो बुधवार इति । बुधान्ह्यजार्कोदयाच्च लङ्का
प्रकाशिकायां कलियुगादेः प्रागतीताः कल्पदिवसाः अरा
वेदकृतेषुयुग्ममखरसमितः स्यात् । इति । अहर्गणो नात्र
युगानां समयस्सिध्यति ॥ चतुर्थेन सूत्रेण राश्यादिविभा
प्रमाणं प्राणकलयोः क्षेत्रसाम्यं ग्रहनक्षत्रकक्षयायोजनप्रमा

भाः—ब्रह्मा के दिनमें चौदह मनु होतेहैं।और एक मन
होते हैं । छः मनु पूरे बीत गये, सातवें मनु के २७ वां यु
और वर्तमान युग के तीन पाद भी बीत गये (सत्, त्रेता,
से कलियुग का आरम्भ हुआ—गुरुवार को (द्वापर समा
युधिष्ठिर ने राज्य किया) इस प्रकार आर्यभट्ट के मत
से वर्तमान कलियुग पर्यन्त १९८६ १२०००० वर्ष बीते हैं (
र्यभट्ट के मत से चारो युग (सत्, त्रैता द्वापर, कलि)
चारो युगों की वर्ष संख्या न्यूनाधिक नहीं है । युग के च
एवं इन के मत से मन्वन्तरों की सन्धि भीनहीं होती-
से १ मन्वन्तर में ७२ युग होते हैं ॥ ३ ॥

शशिरा शयष्ठ चक्रं तेऽशकलायोजनानि यव
प्राणेनैति कलां भूः*खयुगांशे ग्रहजवो भवां

(*) प्राणेनैति कलांभूर्यदितर्हि कुतो व्रजेत् कमध्व

शशिनश्चक्रं भगणा द्वादशगुणिता राशयः। शशिनो युगभगणा द्वादश-
गुणिता युगराशयो भवन्ति। भगणाद् द्वादशांशो राशिरित्युक्तं भवति। ते
राशयो खगुणास्त्रिंशद्गुणिता अंशा भवन्ति। राशेस्त्रिशांशो भाग इत्युक्तं
भवति। तेऽंशा वगुणाष्पष्टिगुणाः कला भवन्ति। अंशात् षष्ट्यंशः कलेत्युक्तं
भवति। ताः कला ञगुणा योजनानि भवन्ति। शशिनो युगभयाः कला द-
शगुणिता आकाशकक्ष्यायोजनानि भवन्तीत्यर्थः। ब्रह्माण्डकटाहावच्छिन्नस्य
रविरश्मिव्याप्तस्याकाशमण्डलस्य परिधियोजनान्याकाशकक्ष्यायोजनानीत्यु-
च्यन्ते। खखपट्षद्वीपुराश्विस्वराब्ध्यद्रयब्धिभास्करा इत्याकाशकक्ष्यायोजना-
नि॥ प्राणेनैति कलां भम्। प्राणेनोच्छ्वासतुल्येन कालेन भं ज्योतिश्चक्रं
कलामेति कलापरिमितं प्रदेशमवहवायुवशात्पश्चिमाभिमुखं गच्छति। खख
षड्भूयमतुल्या हि ज्योतिश्चक्रगताः कलाः। चक्रभ्रमणकालनिष्पन्नाः प्राणाश्च
तत्तुल्या इत्युक्तं भवति। अतोघटिकामण्डलगताः प्राणा राशिचक्रगताः
कलाश्च क्षेत्रतस्तुल्या इति चोक्तं भवति॥ खयुगांशे ग्रहजवः। खमाकाशकक्ष्या।
युगं ग्रहस्य भगणाः। आकाशकक्ष्यातो ग्रहभगणैराप्त ग्रहजव। एकपरिवृत्ती
ग्रहस्य जवो गतिमानं योजनात्मकं भवति। ग्रहस्य कक्ष्यामण्डलपरिधियोज-
नमित्यर्थः॥ भयांशेऽर्कः। भस्य नक्षत्रमण्डलस्य कक्ष्याया यांशे षष्ट्यंशे अर्को
भ्रमति। नक्षत्रकक्ष्यातष्षष्ट्यंशेन तुलितार्ककक्ष्येत्युक्तं भवति। अत्र नक्षत्रकक्ष्या
विधीयते। अर्ककक्ष्याहि पूर्वविधिनैव सिद्धा। अर्ककक्ष्या षष्टिगुणिता नक्ष-
त्रकक्ष्या भवतीत्युक्तं भवति॥ पञ्चमेन योजनपरिमिति भूम्यादर्योजनप्रमाणञ्च
प्रदर्शयति।

भाः—चन्द्रमा के भगण को १२ से गुणन करने पर "राशि" होगी अर्थात्
चन्द्रमा के युग के भगण को १२ से गुणन कर राशि होगी। (भगण के १२
भाग को राशि कहते हैं) राशि को ३० से गुणन करनेपर "अंश" होंगे,
(राशिका ३० वां भाग अंश होताहै) अंश को ६० से गुणन करने से कला होगी,
(अंश के ६० वें भाग को कला कहते हैं) कला को १० से गुणन करने पर यो-
जन संख्या होगी अर्थात् चन्द्रमा के १ युग के कला को १० से गुणन करने
पर गुणनफल आकाश कक्षा का (योजन में) परिमाण होगा। इतनी दूर
में सूर्य के किरणों का प्रसार होता है। एक [illegible] [illegible]
की गति पूर्व से पश्चिम को एक कला

बिम्बव्यास के योजन संख्या से क्रम से ५ वां अंश, १० वां अंश १५, २०, अंश, है। चन्द्रमा की कक्षा से ये व्यास सिद्ध होते हैं। यहां चन्द्रमा का योजन कर्ण से चन्द्रमा मध्ययोजन कर्ण जानना। युग में सूर्य के भगण के तुल्य जानना। ॥ ५ ॥

भाऽपक्रमो ग्रहांशाश्शशिविक्षेपोऽपमण्डलात्कार्धम्।
शनिगुरुकुज खकगार्धं भृगुबुध ख स्चाङ्गुलो घहस्तोना ॥६॥

भाऽपक्रमो ग्रहांशाः। ग्रहाणां भ अंशाश्चतुर्विंशतिभागा अपक्रमः। परमापक्रम इत्यर्थः। पूर्वापरस्वस्तिकात्त्रिराश्यन्तरे घटिकामण्डलापक्रम मण्डल योरन्तरालं चतुर्विंशतिभागतुल्यमित्यर्थः॥ अपमण्डलाच्छशिनः परमविक्षेपो कार्धं नवानामर्धं सार्धाश्चत्वारोऽंशाः॥ शनिगुरुकुज खकगार्धम्। शनेर्विक्षेपः ख द्वावंशौ। गुरोः क एकांशः। कुजस्य गार्धं त्रयाणामर्धं सार्धोंऽशः। भृगुबुधख। भृगुबुधयोर्विक्षेपः ख द्वावंशौ॥ स्चाङ्गुलो घहस्तो ना। पुरुषस्स्चाङ्गुलो घहस्तश्च। स नवतिः। च षट्। षण्णवत्यङ्गुलः पुरुषः। घहस्तश्चतुर्हस्तश्च पुरुषः। नृपियोजनमित्यादौ नरशब्देन षण्णवत्यङ्गुलप्रमाणमुदितमित्युक्तं भवति। तदेव चतुर्हस्तप्रमाणं भवति। चतुर्विंशत्यङ्गुलैरेको हस्तो भवतीति प्रोक्तं भवति। अङ्गुलस्य परिमाणानुपदेशाल्लोकसिद्धमेवाङ्गुलं गृह्यते। उक्तञ्च तत्परिमाणं तन्त्रान्तरे। (लीलावत्याम्)

"यवोदरैरङ्गुलमष्टसंख्यैर्हस्तोऽङ्गुलैष्षड्गुणितैश्चतुर्भिः।
हस्तैश्चतुर्भिर्भवतीह दण्डः क्रोशस्सहस्रद्वितयेन तेषाम्" ॥

इति॥ इह विक्षेपकथने शन्यादीनां भृगुबुधयोश्च पृथग्ग्रहणं कृतम्। तेन तेषां तयोश्च विक्षेपानयने प्रकारभेदोऽस्तीति सूचितम्॥ कुजादीनां पञ्चानां पातभागान् सूर्ययुतानां तेषां मन्दोच्चांशांश्च सप्तमेन सूत्रेणाह।

भाः—ग्रहों का परमाक्रम २४ अंश है। अर्थात् 'पूर्वस्वस्तिक' और 'अपरस्वस्तिक' ३ राशि के अन्तर पर हैं "घटिकामण्डल" और "अपक्रममण्डल" के बीच का भाग २४ अंश है। "अपक्रममण्डल" से चन्द्रमा का "परमविक्षेप" $4\frac{1}{2}$ अंश है, शनि का विक्षेप २ अंश, गुरु का १ अंश, मङ्गल का $1\frac{1}{2}$ अंश शुक्र और बुध का विक्षेप २ अंश है। ४ हाथ का पुरुष होता है। और २४ अङ्गुल का १ हाथ एवं ९६ अङ्गुल का पुरुष होता है। ८ पेटे से पेटे मिले

अतीतोत्तयुगं कोजं द्वि ुणं भगणा, द्वहेपवरतु तयो." ॥ +

इति । अत्रापि पठितभागा एव लभ्यन्ते नतु भगणाः । अतएवं

केनचिद्दुद्धिगता स्वबुद्धया परिकल्प्यैवं लिखितमिति । अस्मिन्पद्ये

तीतास्समा लिख्यन्ते ।

" रसखाभ्रार्कपगनागगोचन्द्राः प्राक्शलेस्समाः" ।

इति ॥ अष्टमेन सूत्रेण शशिनश्च पूर्वसूत्रोदितसूर्यबुधभृगुकुजगुरु

मन्दवृत्तानि शनिगुरुकुजभृगुबुधानां शीघ्रवृत्तानि चाह ।

भा०:-बुध का पात अंश २०, शुक्र का ६०, मङ्गल का ४०, बृहस्पति

शनि का १००, ये प्रथम पात हैं । ये उक्त पात अंश मेषादि राशि से च

आदि के व्यवस्थित पात होते हैं, यहां प्रथम शब्द से द्वितीयपात का

चित होता है । और वह प्रथमपात से चक्रार्द्धान्तर में स्थित है ।

मडल " और " अपमण्डल " के सम्पात स्थान को " पात "

वेही दोनों यहां होते हैं । सूर्य का मन्दोच्च ७८ अंश, मेष आदि

स्थित होता है । बुध का मन्दोच्च २१० अंश, शुक्र का ९० भा

११८ गुरु का १८० और शनि का २३६ भाग हैं ॥ ७ ॥

कार्धानि मन्दवृत्तं शशिनश्छ ग छ घ ढ छ क य

क गुड ग्ल कृ दृड तथा शनिगुरुकुजभृगुबुधोच्चश

कस्य नवानामर्धं कार्धानि, । अर्धपञ्चमैरपवर्तितानि वृत्ता

त्यर्थः । शशिनो मन्दवृत्तं छ सप्त । यथोक्तेभ्यः सूर्यबुधादिभ्यश्

नि गादीनीत्यर्थः । महाणाम्रांशाद्धि वृत्तपरिमितिः कल्प्यते ।

वृत्तानि भवन्ति । तत्र सूर्यस्य मन्दवृत्तं ग त्रीणि । मन्दवृत्त

भवतीति । बुधस्य छ सप्त । भृगोः घ चत्वारि । कुजस्य ढ

छ सप्त । शनेः क नव ॥ शनिगुरुकुजभृगुबुधोच्चशीघ्रेभ्यः

शीघ्रोच्चनिमित्तशीघ्रगतिवशाज्जातानि वृत्तानि कादीनि ।

रोः गुड । गत्रीणि । ड त्रयोदश । षोडशेत्यर्थः । कुजस्य ग्ल

पञ्चाशत् । त्रिपञ्चाशदित्यर्थः । भृगोः कृल । क नव । ल प

द्विरित्यर्थः । बुधस्य दृड । द अष्टादश । ड त्रयोदश । ए

+ प्रकाशिकापुस्तके "रुद्रगरशैलयमुनीन्दु गमाः ।

रद्रा । भगणा नयेपयस्तु तयोः । इति लिखितम्-

१० वीं गीतिका का अर्थ नीचे लिखे चक्र द्वारा किया गया है।

ज्या–ज्ञापक चक्र।

संख्या	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
खंडसं०	२२५	२२४	२२२	२१९	२१५	२१०	२०५	१९९	१९१	१८३	१७४	१६२	१५४

संख्या	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
खंडसं०	१४३	१३१	११९	१०६	९३	७९	६५	५१	३७	२२	७

दशगीतिकासूत्रमिदं भूग्रहचरितं भपञ्जरे ज्ञात्वा।
ग्रहभगणपरिभ्रमणं स याति भित्त्वा परं ब्रह्म ॥११॥

भूमेर्ग्रहाणाञ्च चरितं यस्मिन्दशगीतिका सूत्रे तद्दशगीतिकासूत्रम्। भपञ्जरे ज्ञात्वा। गोले ज्ञात्वा। भपञ्जरमध्ये भूस्तिष्ठति। चन्द्रादिमन्दान्ता ग्रहास्तस्योपरि प्राङ्मुखं चरन्तो ज्योतिश्चक्रगत्यापराभिमुखं भ्रमन्ति। तत उपरि स्वगतिहीनं नक्षत्रमण्डलमपराभिमुखं भ्रमति। इत्यादि ज्ञात्वेत्यर्थः। स इति गणितविदेवंविधं ग्रहादिचरितं ज्ञात्वा ग्रहनक्षत्राणां मार्गं भित्त्वा परं ब्रह्म गच्छति॥

इति पारमेश्वरिकायां भटदीपिकायां गीतिकापादः प्रथमः।

भा०:–पृथिवी और ग्रहों का चरित जिस में वर्णित है। उस को राशिचक्र में यावत् जान कर, नक्षत्र चक्र में पृथिवी अवस्थित है और चन्द्रमा मन्दग्रह आदि अपनी २ गति से पूर्व की ओर चलते हुए ज्योतिश्चक्र की गति से पश्चिमाभिमुख भ्रमण करते हैं। इस के ऊपर अपनी गति से हीन नक्षत्रमण्डल भ्रमण करता या दीख पड़ता है। गणितज्ञ लोग इस प्रकार ग्रह आदिकों के चरित को जान कर पर ब्रह्म को प्राप्त होते हैं॥ ११॥

इति आर्यभटीये गीतिका पादः समाप्तः॥ १॥

एवं दशगीतिकात्मकेन प्रथमपादेनातीन्द्रियमर्थजातमुपदिश्येदानीं तदनुपपन्नादागणितमर्थजातं ग्रन्थान्तरेण प्रदर्शयिष्यन्देवतानमस्कारपूर्वं तदभिधानप्रतिजानाति

ब्रह्मकुशशिबुधभृगुरविकुजगुरुकोणभगणान्नमस्कृत्य।
आर्यभटस्त्विह निगदति कुसुमपुरेऽभ्यर्चितं ज्ञानम् ॥१॥

ब्रह्मभूमिचन्द्रबुधभृगुसूर्यकुजगुरुशनिनक्षत्रगणान्नमस्कृत्य कुसुमपुरे कुसुमपुराख्ये अस्मिन्देशे। अत्र चिरं ...मं कुसुमपुरवासिभिः पूजितं गणितज्ञानमाप्तलभ्यं तन्त्रमार्यभटो निगदति।

वर्गस्समचतुरश्रः * फलञ्च सदृशद्वयस्य संवर्गः ॥ ;

यस्य चतुरश्रस्य क्षेत्रस्य चत्वारो बाहवः परस्परं समास्स्युः कर्णद्वयञ्च स्परं समं भवेत् तत्क्षेत्रं समचतुरश्रमित्युच्यते । स क्षेत्रविशेषो वर्गसंज्ञितो ति । फलञ्च । तस्मिन् क्षेत्रे यत्क्षेत्रफलं भवति तदपि वर्गसंज्ञितं भवति । फलसमुदायस्य वर्गसंज्ञा भवति । अभीष्टक्षेत्रस्यान्तर्भागे हस्तमितैश्चतुभि- हुभिर्निष्पन्नानि यानि समचतुरश्राणि तानि क्षेत्रफलानीत्युच्यन्ते । एवं कोणवृत्तादिक्षेत्रेष्वपि हस्तोन्मितचतुरश्रपरिकल्पनया जातानां चतुरश्रा- नां फलसंज्ञा भवतीति वेद्यम् । सदृशद्वयस्य संवर्गः । सदृशयोः परस्परतु- योस्संख्ययोर्यस्संवर्गः परस्परहतिस्स वर्गसंज्ञो भवति । स्वस्य स्वसंख्यया नं वर्गकर्मेत्युक्तं भवति ॥ उत्तरार्धेन घनमाह ।

भा०:—जिस "चतुर्भुज क्षेत्र"के चारों भुजा एवं दोनों कर्ण परस्पर समान हों, ो "समचतुरस्र" क्षेत्र कहते हैं । ऐसे "समचतुरस्र" क्षेत्र का नाम "वर्गक्षेत्र" है । और इस के फल का नाम "वर्गक्षेत्रफल" होता है । समान दो ख्याओं के परस्पर गुणन को "संवर्ग" कहते हैं ॥ ३, और आधी गीति- का अर्थ हुआ ॥

सदृशत्रयसंवर्गो घनस्तथा द्वादशाश्रस्स्यात् ॥ ३ ॥

तुल्यसंख्यात्रयस्य संवर्गः परस्परहतिर्घनसंज्ञो भवति । स्वस्य स्वसंख्य- गुणितस्य पुनरपि स्वसंख्यया हननं घनकर्मेत्युक्तं भवति । तथा द्वादशा- क्षेत्रञ्च घनसंज्ञं भवति । एतदुक्तं भवति । हस्तोन्मितदैर्घ्यविस्तृतेस्समचतु- श्रस्य स्तम्भादेर्यथा मूले तिर्यगायतानि चत्वार्यश्राणि भवन्ति । तथाग्रे त्वारि । अधऊर्ध्वगतानि चत्वारि । एवं द्वादशभिरश्रैर्युतं क्षेत्रञ्च घनसंज्ञं वतीति । अत्र सदृशद्वयसंवर्गस्सदृशत्रयसंवर्ग इत्याभ्यामेव वर्गकर्म घनकर्म प्रदर्शितम् । अस्माद्विधेर्यावत्तत्सिद्धं परैरुक्तं प्रक्रियान्तरं विलिख्यते*।

"समद्विघातः कृतिरुच्यतेऽथ स्थाप्योऽन्त्यवर्गो द्विगुणान्त्यनिघ्नः ।

---

* चतुरश्रैरितिपाठो वैदिकः शतपथब्राह्मणादिषु दृश्यते वर्णात्मिपदकर्षेषु ोपलभ्यते किन्तु चतुरस्रैरित्येव पाठो दृश्यते । यत्र यत्रास्मिन् ग्रन्थे-अस्र ःदाने "अश्र" पठित तत्र सर्वत्रायमेव हेतुर्ज्ञेयः ।

* तथा लीलावत्याम्

स्यस्योपरिष्टाद् तयापरेऽङ्कास्त्यक्तान्त्यमुत्सार्य पुनश्च राशिम्।'

इति वर्गकर्म ।

"समात्रिघातश्च घनः प्रदिष्टः स्थाप्यो घनोऽन्त्यस्य ततोऽन्त्यवर्गः
आदित्रिनिघ्नस्त आदिवर्गस्त्यन्त्याहतोऽथादिघनश्च सर्वे ॥
स्थानान्तरत्वेन युता घनः स्यात् प्रकल्प्य तत्खण्डयुगं ततोऽन्यत्।
एवं मुहुर्वर्गघनप्रसिद्ध्या आद्यङ्कतो वा विधिरेष कार्यः ॥

इति घनकर्म । अन्त्यानि तत्कालस्थापितघनस्य मूलादीन्यन्त्यस्थानं
आदिस्तस्यादिभूतमेकमेव 'स्थानम्। खण्डयुगमादिखण्डमविन्यस्तं तदा
न्यस्तमन्त्यखण्डञ्च । अन्यत् अन्यत्र प्रकल्प्येत्यर्थः ॥ भिन्नवर्गभिन्नघनयोः

"अंशकृती भक्तायां छेदजवर्गेण भिन्नवर्गफलम् ।
अंशस्य घनं विभजेच्छेदस्य घनेन घनफलं भिन्नम् ॥"

इत्याभ्यां वर्गफलघनफले कल्प्ये ॥ वर्गमूलमाह ।

समान तीन संख्याओं के परस्पर गुणन को "घन" कहते हैं एवं
आस्त्र क्षेत्र (१२ कोण का) का नाम भी "घनक्षेत्र" है ॥ ३ ॥

**भागं हरेदवर्गान्नित्यं द्विगुणेन वर्गमूलेन ।
वर्गाद्वर्गे शुद्धे लब्धं स्थानान्तरे मूलम् ॥४॥**

ओजस्थानानिवर्गसंज्ञितानि।युग्मस्थानान्यवर्गसंज्ञितानि।अन्त्याद्वर्गं
ल्धं वर्गं विशोधयेत्। शुद्धस्य तस्य वर्गस्य मूलमेकत्र संस्थापयेत्।पुनस्तन्मूलं
यक् संस्थाप्यपृथक्स्थेन तेन द्विगुणितेन मूलाख्येन फलेन शुद्धवर्गस्थानस्यादि
तमवर्गस्थानंविभज्य लब्धफलस्य वर्गञ्च विहृतस्थानस्यादिभूताद्वर्गं
शोध्यपुनस्तत्फलं मूलाख्य पूर्वस्थापितमूलफलस्यादित्वेन पङ्क्त्यान्ते
पुनस्तया मूलपङ्क्त्या पृथक्स्थया द्विगुणितया शुद्धवर्गस्थानस्यादि
स्थानंविभज्य तत्र लब्धस्य फलस्य वर्गञ्च [illegible]
द्वर्गस्थानाद्विशोध्यतत्फलमपि मूलपङ्क्तौ स्थापयेत्।पुनरप्येवं
नायमानम्। तत्र दृष्टा मूलपङ्क्तिर्मूलमेव। सदा विभज्यम् । यदि तत्र लब्धं
भवेत् तदा शून्यं मूलपङ्क्तौ संस्थाप्य पुनरन्यदवर्गस्थानं विभजेदित्यर्थः।
दा वर्गस्थानं ध्रियते तदा तस्याऽवर्गस्थानानि तस्यावयवभूतानीतिश्लय

र्ध्व स्थानान्तरे तत्तल्लब्धं स्थानान्तरत्वेन पङ्क्त्यां स्थाप्यमित्यर्थः ॥
र्गमूलमाह ।

भा०- इकाई के स्थान से आरम्भ करके प्रत्येक दूसरे अङ्क के ऊपर एक विन्दु रक्खो, इस प्रकार पूरी राशि कई अंशों में बंट जावेगी, इन अंशों की संख्या से वर्ग मूल के अङ्कों की संख्या जानी जायगी। बांई ओर के पहिले अंश में से कौन सी सब से बड़ी संख्या का वर्ग घट सकता है, उसे निर्णय करो वही वर्गमूल का पहिला अङ्क होगा, उस को भाग की तरह दी हुई संख्या की दाहिनी ओर लिखो और उस के वर्ग को उसी बांई ओर के अंश में से घटाओ। फिर बाकी पर दूसरे अंश अर्थात् आगेके दो अङ्कों को उतारो। इस प्रकार जो दो राशि बनेंगीं उन को "भाज्य" मानो और उस भाज्य के दाहिने के एक अङ्क को छोड़ कर उस में पहिली वर्गमूल संख्या के दूने का भाग दो और भागफल को उसी मूल की दाहिनी ओर "भाजक" की दाहिनी ओर लिखो। फिर उस भाजक को मूल के शेष अङ्क से गुणा करके गुणन फल को भाज्य में से घटाओ। फिर और और सब अंशों को उतार कर पहिले की तरह कार्य करो। उदाहरणः—

२२०६ का वर्गमूल बताओ।

२२०९ (४७
१६
———
८७) ६० ९
६० ९
———

यहां पहिला अंश २२ है। सब से बड़ी संख्या के वर्ग १६ को २२ में से घटा सकते हैं। इस लिये ४ ही वर्गमूल का पहिला अङ्क होगा। पहिले अंश २२ में से १६ घटाने से ६ शेष रहे। दूसरा अंश ०९ को ६ की दाहिनी ओर उतारने से ६०९ हुए। ६०९ के ९ को छोड़ देने से ६० रहे। ६० में मूल के अङ्क ४ के दूने अर्थात् ८ का भाग देने से भागफल ७ हुआ। ७ को ४ के दाहिनी ओर ८ के दाहिने लिखो। फिर ८७ को ७ से गुणा करके गुणन फल ६०९ में से घटाने से बाकी कुछ नहीं रहा; इस लिये ४७ इष्ट वर्गमूल हुआ ॥ ४ ॥

अघनाद्भजेद्द्वितीयात् त्रिगुणेन घनस्य मूलवर्गेण।
वर्गस्त्रिपूर्वगुणितश्शोध्यः प्रथमाद्घनश्च घनात् ॥

प्रथमस्थानं घनसंज्ञम्। द्वितीयतृतीये अघनसंज्ञे। चतुर्थं घनसंज्ञ
पञ्चमषष्ठे अघनसंज्ञे। एवमन्यान्यपि स्थानान्युक्तक्रमाद्विद्यानि। वर्गावर्ग
भागो घनविभागश्च युक्तिसिद्धत्वादिहाचार्येणानुपदिष्टः। अन्त्याद्घनस्था
द्यथालब्धं घनं विशोधयेत्। पुनस्तस्य मूलमेकत्र संस्थाप्य पुनस्तद्घन
वर्गीकृत्य त्रिभिश्च निहत्य तेन शुद्धघनस्थानस्यादिभूतयोरघनस्थानयो
तीयाद्वामगादघनस्थानात्फलं विभजेत्। द्वितीयमघनस्थानं विभजेदित्य
तत्र लब्धं फलं वर्गीकृत्य त्रिभिश्च निहत्य पूर्वस्थापितेन मूलफलेन च नि
विहतस्थानस्यादिभूतात्प्रथमात्स्यादघनस्थानाद्विशोध्य तस्य फलस्य
शुद्धराशेरादिभूताद्घस्थानाद्विशोध्यपुनस्तत्फलं घनमूलाख्यं पूर्वस
घने मूलात्यफलस्यादिस्थाने पङ्क्तिरूपेणस्थापयेत्। पुनर्मूलपङ्क्त्या
घस्यया वर्गीकृतया त्रिभिश्च निहतया शुद्धघनस्यादिभूतमघनस्थानं
ध्य लब्धं फलं वर्गीकृत्य त्रिभिश्च निहत्य पूर्वस्थापितमूलपङ्क्त्या
हत्य विहतस्थानस्यादिभूतात्प्रथमात्स्यादघनस्थानाद्विशोध्य फलस्
शुद्धस्थानस्यादिभूताद्घस्थानाद्विशोध्य तत्फलं घनमूलाख्यं
पितघनपङ्क्तौ स्थापयेत्। पुनरप्येवं कुर्याद्यावत्स्थानावसानं। तत्रज
पङ्क्तिर्घनमूलफलं भवति। भिन्नेषु तु। अंशघनमूलराशौ स्वनमूलं छेद
इत्यनेन वेद्यम्। तथा भिन्नवर्गमूले च त्रिगुणेन घनस्य मूलवर्गेण
नेन। एवं प्रथमं घनशोधनमभिहितं भवति। वर्गमूले च द्विगुणेन
हरेदित्यनेन प्रथमं वर्गशोधनं भवति। घनकर्म लौकिके गणित
ननु कामक्रियागोलयोः॥ त्रिभुजक्षेत्रस्य फलं पूर्वार्धेनाह।

भा०—इकाई के स्थान से आरम्भ करके प्रत्येक तीसरे अङ्क के ऊप
चिन्ह रख कर राशि को कई एक अंशों में बांट लो, यह संगत
न की अङ्कसंख्या होगी।

बांई ओर के पहिले अंश में जिस बड़ी से बड़ी संख्या का घन
कता हो उस को भाग की राशि के अनुसार दी हुई राशि की दा
इ जितो बड़ी संख्या हट घनमूल का पहिला अङ्क होगी पहिले

र मूलांश के घन को घटाओ और अन्तरफल पर पास वाले दूसरे अंश को तारो और इसे "भाज्य" समझो।

पुनः लब्ध मूलांश के वर्ग के तिगुने को "जांच भाजक" समझो। भाज्य पिछले दो अङ्कों को छोड़कर उस में "जांच भाजक" का भाग देने से मूल ा दूसरा अङ्क मिल जावेगा।

मूल में जो दो अङ्क (या कई अङ्क) अभी मिले हैं, उन को ३ से गुणा रो और गुणन फल को नये मूलाङ्क के (जो जांच भाजक द्वारा निश्चय हुआ है) बांई ओर रक्खो, फिर इस राशि को नये मूलाङ्क से गुणा करो और गुणन फल को "जांच भाजक" के नीचे दो अंक दाहिनी ओर रक्खो और उन को जोड़ो, अब यही योगफल असल भाजक होगा।

"असल भाजक" को उस के शेष अंक से गुणा करो और गुणन फल को भाज्य में से घटाओ। फिर अन्तरफल पर पास वाले दूसरे अंश को उतारो इस प्रकार जब तक सब अंश उतार लिये न जांय, तब तक ऊपर लिखी हुई रीति के अनुसार कार्य करोः—

उदाहरण—४२८७५ का घनमूल निकालो।

जांचभाजक ३×३=२७ ४२८७५ (३५

 २७
असलभाजक ९५×५=४७५ / ३१७५ — १५८७५

३१७५×५=१५८७५

३५ इष्ट घनमूल हुआ। ॥ ५ ॥

त्रिभुजस्य फलशरीरं समदलकोटीभुजार्धसंवर्गः ॥

त्रिभुजस्य क्षेत्रस्य या समदलकोटी। लम्ब इत्यर्थः। त्रिभुजपार्श्वगतो भुजो भूमिरित्युच्यते ऊर्ध्वकोणाद्भूम्यासं स्यमस्यसूत्रं स लम्ब इत्युच्यते। लम्बस्योभयपार्श्वगते ये त्रिभुजदले त्रिकोणरूपे तयोरयं लम्ब एक एव कोटिर्भवति। तस्मात्समदलकोटीत्युच्यते। तस्याः कोट्या भुजा तत्पार्श्वगतो भूखण्डस्स्यात्। अतो भुजयोरर्धं भूम्यर्धं भवति। भूम्यर्धलम्बयोस्संवर्गस्त्रिभुजक्षेत्रफलं भवति॥ घनस्य त्रिभुजस्य

भा०: त्रिभुजक्षेत्र के जो दो तुल्य दल (अर्द्धभाग) कोट
ुज के अधोगत भुजा की भूमि (आधार) कहते
आधार तक जो-लम्ब सूत्र उसे „ लम्ब „ कहते हैं
को लम्ब से गुणन करने पर—गुणनफल " त्रिभुज क्षे
एवं आर्यागीतिका अर्थ हुआ ॥

ऊर्ध्वभुजातत्संवर्गार्धं स घनष्षडि

ऊर्ध्वभुजा क्षेत्रमध्योच्छ्रायः । तदिति क्षेत्रफल
फलस्य च संवर्गार्धं यत् स घनः।घनफलं भवति। स
र्वात षड्बाहुर्भवति । सर्वतस्त्रिकोणं क्षेत्रमित्यर्थः ।
भुजयोर्योगस्तदन्तरगुणो भुवाहृतो लब्ध्या द्विस्था
तयोस्स्याताम् । स्वाबाधाभुजकृत्योरन्तरमूलं प्रजायते
युक्त्या च लक्षिष्यति । युक्तिस्तु लीलावतीव्याख्याय
र्धयावर्गान्तरपदमत्रोर्ध्वबाहुर्भवति ॥ वृत्तक्षेत्रफलं पूर्वा

ऊर्ध्वभुजा (क्षेत्र के बीच का उच्छ्राय) औ
का जो अर्द्धभाग—वह 'घन' होता है। अर्थात् वह क्षेत्र
हु" होता है। अथवा यों समझो कि वह सब ओर से

समपरिणाहस्यार्धं विष्कम्भार्धहते

समपरिणाहस्य समवृत्तक्षेत्रपरिधेरर्धं विष्कम्भार्धे
वृत्तक्षेत्रफलानयनेऽयमेव प्रकारस्सूक्ष्म इत्येवशब्देन प्र
क्षेत्रस्य फलमपरार्धेनाह ।

समवृत्त क्षेत्र के परिधि के आधे को व्यास के
रने पर गुणनफल वृत्तक्षेत्र का फल होगा॥६ एवं आर्ध

तन्निजमूलेन हतं घनगोलफलं निर

तत्समवृत्तक्षेत्रफलं निजमूलेन स्वकीयमूलेन हतं घ
रयगोलं स्फटमित्यर्थः ॥ विषमचतुरस्रादीनामन्तःकर्णयोः
धरागतलम्बानां क्षेत्रफलमाह ।

और उक्त समवृत्त क्षेत्रफल को स्वकीय मूल से
घन गोलफल होगा ॥ ७ ॥

आयामगुणे पार्श्वे तद्योगहृते स्वपा

आयामो लम्ब।तेन गुणिते पार्श्वे भूवदने। भूमिर्मुखश्चेत्यर्थः। भूवदनाभ्यां
:हृते लम्बे भवदनयोर्योगेन हृते ये लब्धे ते पातरेखे भवतः। कर्णयोस्सं-
द्भूम्यन्तो लम्बभागस्तथा कर्णयोस्संपातान्मुखान्तो लम्बभागश्चेत्यर्थः। तत्र
ो लब्धं भूमिकर्णयोगयोरन्तरालं मुखतो लब्धं मुखकर्णयोगयोरन्तरा-
आयामे लम्बे विस्तरयोगार्धेन भूमिमुखयोर्योगार्धेन गुणिते क्षेत्रफलं भवति।
ज्ञेयम्। समलम्बक्षेत्रेऽयं विधिः। ननु विषमलम्बे। तत्र चेल्लम्बयोः फल-
परिगृहीतस्त्विति सन्देहस्स्यात् उद्देशकेन यदि समलम्बो नोद्दिश्यते तदा
मानलम्बस्य चतुर्भुजस्य मुखोनभूमिं परिकल्प्य भूमिं भुजौ भुजौ त्र्यस्रप-
ाऽपे तस्यावधेर्लम्बमितिस्ततश्चाबाधयोना चतुरश्रभूमिः। तल्लम्बयर्गैक्यपदं
स्यात्।समानलम्बे लघुदोःकुयोगान्मुखान्यदोस्संयुतिरल्पिका स्यात्। इत्य-
समलम्बतत्कर्णतत्सम्भवा वेद्याः॥ उक्तानुक्तक्षेत्राणां सर्वेषां फलानयनं
र्धेनाह।

भा०-लम्ब से दोनों भुजाओं को गुणन करो, गुणन फल को आबाधा
ह) के योग से भाग दो, तो भागफल स्वपातरेखा होगी। अर्थात् करणाश्रित
सम्पात रेखा होगी॥ उस पातरेखा को लम्ब रेखा से गुणन कर गुणन
" आयाम क्षेत्र " का फल होगा॥ ८॥

सर्वेषां क्षेत्राणां प्रसाध्य पार्श्वे फलं तदभ्यासः॥

उक्तानामनुक्तानाञ्च क्षेत्राणां पार्श्वे प्रसाध्य। आयामविस्तारात्मकौ बाहू
ाध्य। उपपत्त्या निश्चित्य। तयोरभ्यासः कर्तव्यः। तत् क्षेत्रफलं भवति। सम-
रश्रस्य तद्घनस्य च पार्श्वयोस्स्पष्टत्वान्न प्रसाधनम्। त्र्यस्रस्य लम्ब आयामः।
पतभूम्यर्धं विस्तारः। घनगोलेऽपि वृत्तफलस्य मूलमुच्छ्रायः। विषमचतुरश्रे
लम्बे लम्ब आयामः। भूवदनयोगार्धं विस्तारः। विषमचतुरश्रे विषम
य एकं कर्णभूमिं प्रकल्प्य तत्पार्श्वगतयोस्त्रिकोणयोर्लम्बद्वयमानयेत्। तत्र
यद्वैक्यमायामः कर्णाख्यभूम्यर्धं विस्तारः। एवं सर्वत्र स्वधिया विस्ता-
यामौ परिकल्प्यौ॥ कालक्रियागोलोपयोगरहितानां गणितानां प्रतिपादनं
सङ्गिकमिति वेद्यम्॥ समवृत्तपरिधौ व्यासार्धतुल्यज्याप्रदेशज्ञानमपरार्धेनाह।

भा०-जिन क्षेत्रों का वर्णन यहां किया गया है एवं जिन का वर्णन यहां
हीं हुआ है ऐसे सब क्षेत्रों के दोनों भुजाओं को उपपत्ति से निश्चय करे,
नों का अभ्यास करना चाहिये, तब क्षेत्रों का फल ज्ञात हुआ करेगा॥

परिधेष्षड्भागज्या विष्कम्भार्धेन सा तुल्या॥ ९॥

परिधेष्षड्भागस्य राशिद्वयस्य या जीवा सा विष्कम्भार्धेन व्यासार्धेन तुल्या

समस्तज्ये च ते गोलपादस्याद्यन्तभागयोः ॥
दीर्घाल्पयोस्तु यो भेदो बाह्वोः कोट्योस्तथाच यः ।
तद्वर्गैक्यपदं मध्यभागस्य ज्या समस्तज्या ॥
समस्तज्यात्रयस्यात्र साम्यात् खण्डत्रयं समम् ।
व्यासार्धार्धमिता तस्मादेकर्क्षज्येति निश्चितम् ॥

ति ॥ जीवापरिकल्पनायां युक्तिप्रकारं दर्शयति ।

भा०:—दो अयुत (२०००) परिमित व्यास की आसन्न परिधि का परिमाण ८३२ है । अर्थात् १ः ३. १४१६ ये गुणोत्तर हुए। इसी प्रकार त्रैराशिक द्वारा इससे न्यूनाधिक परिमिति व्यास के आसन्न परिधि का परिमाण समझना चाहिये॥१०॥

समवृत्तपरिधिपादं छिन्द्यात्त्रिभुजाच्चतुर्भुजाच्चैव ।
समाचापज्यार्धानि तु विष्कम्भार्धे यथेष्टानि ॥ ११ ॥

समवृत्तस्य परिधिपादं छिन्द्यात् । युक्तिपरिकल्पिताभी रेखाभिश्छिन्द्या-
दित्यर्थः। तत्र जातात्त्रिभुजात्क्षेत्रात्कानिचिज्ज्यार्धानि सिध्यन्ति। त्रिभुजस्याग्र-
जात्सिध्यन्तीत्यर्थः । अन्यानि तत्र जाताच्चतुर्भुजात्क्षेत्रात्सिध्यन्ति । चतुर्भुजा-
ग्रजात्सिध्यन्तीत्यर्थः ॥ समचापज्यार्धानि । परस्परं समानामर्धचापानां ज्या-
नीत्यर्थः । विष्कम्भार्धे सिद्धे सत्यन्यानि सिध्यन्तीत्यर्थः । यथेष्टानि । गीति-
कासूक्तानां चतुर्विंशत्यर्धजीवानामध्ये यानीष्टानि तानि सिध्यन्ति । सर्वाणि
सिध्यन्तीत्यर्थः । एवं सिद्धज्यार्धानि सिध्यन्ति । तानि पूर्वपूर्वहीनानि खण्डज्या-
नि भवन्ति । अत्रोच्यते ॥

वृत्तांशो धनुराकारस्समस्तधनुरुच्यते ।
तस्यार्धद्वयगा जीवा समस्तज्या च तस्य तु ॥
तस्या अर्धमिहार्धज्या तच्चापार्धं तु तद्धनुः ।
दोःकोटिजीवे त्वर्धज्ये चापे तद्धनुषी तथा ॥
गतगम्याख्यभागौ हि दोःकोटी वृत्तपादके ।
तज्ज्ये दिग्वृत्तयुग्मान्ते केन्द्रवृत्तांशकादतः ॥
अर्धज्यापातपरिच्छिन्नं तदुत्क्रमधनुर्भवेत् ।
दोःकोट्योरेकहीना द्विजीवा स्यादितरोत्क्रमः ॥
अर्धज्योत्क्रमवर्गैक्यपदं तद्धनुषो भवेत् ।
समस्तज्या तदर्धं तु तच्चापार्धे ऽर्धजीवका ॥
ऊर्ध्वोत्क्रमगम्याभिर्जाभिरुद्दृश्यं भवेदिह ।

समस्तज्ये च ते गोलपादस्याद्यन्तभागयोः ॥
दीर्घाल्पयोस्तु यो भेदो बाह्वोः कोट्योस्तथा च यः ।
तद्वर्गैक्यपदं मध्यभागस्य ज्या समस्तज्या ॥
समस्तज्यात्रयस्यात्र साम्यात् खण्डत्रयं समम् ।
व्यासार्धार्धमिता तस्मादेकर्क्षज्येति निश्चितम् ॥

ते ॥ जीवापरिकल्पनायां युक्तिप्रकारं दर्शयति ।

भा०:–दो अयुत (२०००) परिमित व्यास की आसन्न परिधि का पर्
८८३२ है । अर्थात् १ः ३. १४१६ ये गुणोत्तर हुए। इसी प्रकार त्रैराशिक द्वारा इससे
न्यूनाधिक परिमिति व्यास के आसन्न परिधि का परिमाण समझना चाहिये॥१०॥

समवृत्तपरिधिपादं छिन्द्यात्त्रिभुजाच्चतुर्भुजाच्चैव ।
समाचापज्यार्धानि तु विष्कम्भार्धे यथेष्टानि ॥ ११ ॥

समवृत्तस्य परिधिपादं छिन्द्यात् । युक्तिपरिकल्पिताभी रेखाभिश्छिन्द्या-
दित्यर्थः। तत्र जातात्त्रिभुजात्क्षेत्रात्कानिचिज्ज्यार्धानि सिध्यन्ति। त्रिभुजस्याग्र-
क्षेत्रात्सिध्यन्तीत्यर्थः । अन्यानि तत्र जाताच्चतुर्भुजात्क्षेत्रात्सिध्यन्ति । चतुर्भुजा-
यतक्षेत्रात्सिध्यन्तीत्यर्थः ॥ समचापज्यार्धानि । परस्परं समानामर्धचापानां ज्या-
र्धानीत्यर्थः । विष्कम्भार्धे सिद्धे सत्यन्यानि सिध्यन्तीत्यर्थः । यथेष्टानि । गीति-
कासूक्तानां चतुर्विंशत्यर्धजीवानाम्मध्ये यानीष्टानि तानि सिध्यन्ति । सर्वाणि
सिध्यन्तीत्यर्थः । एवं पिण्डज्यार्धानि सिध्यन्ति । तानि पूर्वपूर्वहीनानि मत्या-
दीनि भवन्ति । अत्रोच्यते ॥

वृत्तांशो धनुराकारस्समस्तधनुरुच्यते ।
तस्याग्रद्वयगा जीवा समस्तज्या च तस्य तु ॥
तस्या अर्धमिहार्धज्या तच्चापार्धं तु तद्धनुः ।
दोःकोटिजीवे त्वर्धज्ये यदा तद्धनुषी तथा ॥
गतगन्तव्यभागौ हि दोःकोटी वृत्तपादके ।
तज्ज्ये दिग्सूत्रयुग्मान्ते चेष्टवृत्तांशकादतः ॥
अर्धज्याचापरिच्छिन्नं तद्दुत्क्रमज्या भवेत् ।
दोःकोट्योरेकहीना त्रिज्या वा स्यादितरोत्क्रमः ॥
अर्धज्योत्क्रमवर्गैक्यपदं तद्धनुषो भवेत् ।
समस्तज्या तदर्धं च तच्चापार्धांशजीवका ॥

न्ये च ते गोलपादस्याद्यन्तभागयोः ॥
पयोस्तु यो भेदो बाह्वोः कोट्योस्तथाच यः ।
पदं मध्यभागस्य ज्या समस्तज्या ॥
त्यात्रयस्यात्र साम्यात् खण्डत्रयं समम् ।
र्धमिता तस्मादेकर्क्ज्येति निश्चितम् ॥
परिकल्पनायां युक्तिप्रकारं दर्शयति ।
दो अयुत (२०००) परिमित व्यास की आसन्न परिधि का परिमाण
अर्थात् १: ३. १४१६ ये गुणोत्तर हुए। इसी प्रकार त्रैराशिक द्वारा इससे
परिमिति व्यास के आसन्न परिधि का परिमाण समझना चाहिये॥१०॥

वृत्तपरिधिपादं छिन्द्यात्त्रिभुजाच्चतुर्भुजाच्चैव ।
चापज्यार्धानि तु विष्कम्भार्धे यथेष्टानि ॥ ११ ॥

स्य परिधिपादं छिन्द्यात् । युक्तिपरिकल्पिताभी रेखाभिश्छिन्द्या-
त्र जातात्त्रिभुजात्क्षेत्रात्कानिचिज्ज्यार्धानि निष्पन्नि। त्रिभुजस्यात्र-
न्तीत्यर्थः । अन्यानि तत्र जाताच्चतुर्भुजात्क्षेत्रात्सिध्यन्ति । चतुर्भुजा-
न्तीत्यर्थः ॥ समचापज्यार्धानि । परस्परं समानामर्धचापानां ज्या-
। विष्कम्भार्धे सिद्धे सत्यन्यानि सिध्यन्तीत्यर्थः । यथेष्टानि । गीति-
चतुर्विंशत्यर्धजीवानामध्ये यानीष्टानि तानि सिध्यन्ति । सर्वाणि
र्थः । एवं पिण्डज्यार्धानि सिध्यन्ति । तानि पूर्वपूर्वहीनानि मस्या-
न्त । अत्रोच्यते ॥

णो धनुराकारस्समस्तधनुरुच्यते ।
पद्वयगा जीवा समस्तज्या च तस्य तु ॥
अर्धमिहार्धज्या तच्चापार्धन्तु तद्धनुः ।
ोटिर्जीवे त्वर्धज्ये यदा तद्धनुषी तथा ॥
त्यभागौ हि दोःकोटी वृत्तपादके ।
ये दिक्सूत्रयुग्मान्ते चेष्टवृत्तांशकादतः ॥
चापात्परिच्छिन्नं तदुत्क्रमज्या भवेत् ।
ोटिर्जीवैकहीना त्रिज्या वा स्यादितरोत्क्रमः ॥
योरुत्क्रमवर्गैक्यपदं तद्धनुषो भवेत् ।
ज्या तदर्धं तु तच्चापार्धे ऽर्धज्या दका ॥
रुत्क्रमसमाभिज्याभिरेवं भवेदिह ।

भवति । राशिद्वयस्य समस्तजीवात्र जीवेत्युच्यते । न पठितार्धज्या । एक
पठितार्धज्या विष्कम्भार्धेन दलेन तुल्येत्यर्थः ॥ त्रैराशिकेनेष्टवृत्तस्य परि
व्यासकल्पनार्थं व्यासतः परिधिकल्पनार्थञ्च प्रमाणफले दर्शयति ॥

भा०—परिधि के छठे भाग के दो राशियों की जो जीवा (ज्या) वह व
के आधे की बराबर होती है। यहां जीवा से पूर्ण जीवा (पूर्णज्या) समझ
क्योंकि आचार्य्य ने यहां अर्द्धज्या को पढ़ा नहीं ॥ ९ ॥

चतुरधिकं शतमष्टगुणं द्वाषष्टिस्तथा सहस्राणाम् ।
अयुतद्वयविष्कम्भस्यासन्नो वृत्तपरिणाहः ॥ १० ॥

चतुरधिकं शतं यत्तदष्टगुणम् । सहस्राणां द्वाषष्टिश्च । एतदयुतद्वयविष्कम्भ
वृत्तस्यासन्नः परिणाहः । ननु निरशेष इत्यर्थः । परिणाहः । परिधिः । वृत्तस्य प
णाहः । परिधिव्यासयोरेकस्यैव हि निरशेषता सम्भवति । इतरस्य सावय
सम्भवत्येव । दसागन्यहिष्टिपट्संख्यः परिणाहोऽत्र कीर्तितः । गीतिकायां
अर्धज्या उक्तास्तास्सर्वा अपि युक्तित एकराश्यर्धज्याविष्कम्भार्धयोर्ज्ञातयो
तोस्साध्यास्स्युः । तासां सिद्धयर्थमिह परिधिषड्भागस्य समस्तज्याप्रदर्शनं प
धिव्यासज्ञानसाधनभूतफलप्रमाणयोः प्रदर्शनञ्च कृतम् । तत्रैकराश्यर्धज्यायां व
व्यायां द्विराशिसमस्तज्याप्रदर्शनन्तु । क्वचित्समस्तज्यामानीयार्धीकृत्यार्धज्या स
ध्यत इति प्रदर्शनार्थं परिधितो विष्कम्भानयन एवं त्रैराशिकम् । यदि च
धिकं शतमष्टगुणं द्वाषष्टिस्तथा सहस्राणामित्युदितपरिधेरयुतद्वयं विष्कम्भ
तदा चक्रकलापरिमितपरिधेः कियान्विष्कम्भ इति भचक्रस्य विष्कम्भलब्धि

युक्तिस्त्विह प्रदर्श्यते

व्यासार्धार्धं नयेत्केन्द्रात् सौम्यप्राक्सूत्रयोर्द्विधा ।
तदग्राभ्यां परिध्यन्तं सूत्रे प्राक्सौम्ययोर्नयेत् ॥
प्रानायतं तयोः कोटिर्भुजान्यदिति कल्प्यते ।
नोलपादं भवेत्ताभ्यां त्रिधा रविदलमेरागम् ॥
कोट्याग्रात्पूर्वसूत्रान्तं सौम्यान्तञ्च भुजाग्रतः ।
द्वे रेखे बाहुकोटी ते कोट्याद्योस्तु पूर्वयोः ॥
व्यासार्धार्धमे ते स्तस्योः कृत्योर्द्वयोः पुनः ।
निरशेषमस्त्यायर्गात युतयोर्यत्पदद्वयम् ॥
गगनस्पादयं तद्विनिजयापद्वयस्य तु ।

समस्तज्ये च ते गोलपादस्याद्यन्तभागयोः ॥
दीर्घाल्पयोस्तु यो भेदो बाह्वोः कोट्योस्तथाच यः ।
तद्वर्गैक्यपदं मध्यभागस्य ज्या समस्तज्या ॥
समस्तज्यात्रयस्यात्र साम्यात् खण्डत्रयं समम् ।
व्यासार्धार्धमिता तस्मादेकर्तज्येति निश्चितम् ॥

ते ॥ जीवापरिकल्पनायां युक्तिप्रकारं दर्शयति ।

भा०ः—दो अयुत (२०००) परिमित व्यास की आसन्न परिधि का परिमाण
८३२ है । अर्थात् १ः ३. १४१६ ये गुणोत्तर हुए । इसी प्रकार त्रैराशिक द्वारा इससे
ूनाधिक परिमिति व्यास के आसन्न परिधि का परिमाण समझना चाहिये॥१०॥

समवृत्तपरिधिपादं छिन्द्यात्त्रिभुजाच्चतुर्भुजाच्चैव ।
समाचापज्यार्धानि तु विष्कम्भार्धे यथेष्टानि ॥ ११ ॥

समवृत्तस्य परिधिपादं छिन्द्यात् । युक्तिपरिकल्पिताभी रेखाभिश्छिन्द्या-
त्यर्थः । तत्र जातात्त्रिभुजात्क्षेत्रात्कानिचिज्ज्यार्धानि सिध्यन्ति। त्रिभुजस्याश्र-
शात्सिध्यन्तीत्यर्थः । अन्यानि तत्र जाताच्चतुर्भुजात्क्षेत्रात्सिध्यन्ति । चतुर्भुजा-
यश्रात्सिध्यन्तीत्यर्थः ॥ समचापज्यार्धानि । परस्परं समानामर्धचापानां ज्या-
नीत्यर्थः । विष्कम्भार्धे सिद्धे सत्यन्यानि सिध्यन्तीत्यर्थः । यथेष्टानि । गीति-
ादुक्तानां चतुर्विंशत्यर्धजीवानाम्मध्ये यानीष्टानि तानि सिध्यन्ति । सर्वाणि
ाध्यन्तीत्यर्थः । एवं पिण्डज्यार्धानि सिध्यन्ति । तानि पूर्वपूर्वहीनानि मत्या-
ानि भवन्ति । अत्रोच्यते ॥

वृत्तांशो धनुराकारस्समस्तधनुरुच्यते ।
तस्याग्रद्वयगा जीवा समस्तज्या च तस्य तु ॥
तस्या अर्धमिहार्धज्या तच्चापार्धं तु तद्धनुः ।
दोःकोटिजीवे त्वर्धज्ये यदा तद्धनुषी तथा ॥
गतगन्तव्यभागौ हि दोःकोटी वृत्तपादके ।
तज्ज्ये द्विसूत्रयुग्मान्ते चेष्टवृत्तांशकादतः ॥
अर्धज्याचापरिध्यन्तं तदुत्क्रमगुणो भवेत् ।
दोःकोट्योरेकहीना त्रिज्या स्यादितरोत्क्रमः ॥
अर्धज्योत्क्रमवर्गैक्यपदं तद्धनुषो भवेत् ।
समस्तज्या तदर्धं च तच्चापार्धार्धशिञ्जिका ॥

ऊनानीतिवचनं बहुसाध्यापेक्षया प्रथमजीवाखण्डस्य बहुधा स्थापितत्वात् शेषाणीतिवचनं साध्यानामुत्तरजीवाखण्डानां बहुत्वात् ॥ वृत्तादिपरिकल्पनाप्रकारमाह ।

भा०:—प्रथम चापज्यार्द्ध (संख्या) जो ऊन है। वह द्वितीयज्यार्द्ध होगा इसी प्रकार द्वितीय आदि जानना। जैसे :—२२५ प्रथमज्यार्द्ध, २२४ द्वितीय, तृतीय २२२ इत्यादि (प्रथम पा० गी० सू० १०) इसीप्रकार और भी जानो ॥१२॥

वृत्तं भ्रमेण साध्यं त्रिभुजञ्च चतुर्भुजञ्च कर्णाभ्याम् ॥
साध्या जलेन समभूरधऊर्ध्वं लम्बकेनैव ॥ १३ ॥

भ्रमेण कर्कटाख्ययन्त्रेण वृत्तं साध्यम्। एतदुक्तं भवति। ऋज्वीं काञ्चिद्यष्टिं संपाद्य तस्या ऊर्ध्वभागे कण्ठप्रदेशे पाशेन दृढं बध्वा अधोगतायादपि कण्ठान्तं भित्त्वा शलाकाद्वयं कृत्वा तयोरग्रं तीक्ष्णाग्रं कुर्यात्। एवमधोमुखं कर्कटयन्त्रं भवति। पुनश्शलाकयोरन्तराले शलाकां निधाय कर्कटकं विवृतास्यं कुर्यात्। अन्तरालस्थशलाकाया ऊर्ध्वाधश्चलनात्कर्कटास्यमिष्टवृत्तव्यासार्धसमं कृत्वा एकशलाकाग्रं साध्यवृत्तमध्यप्रदेशे संस्थाप्यापरमग्रं वृत्तनेमिप्रदेशे संस्थाप्य कर्कटं भ्रमयेत्। तदभीष्टवृत्तं भवति। इति ॥ त्रिभुजक्षेत्रञ्च चतुर्भुजक्षेत्रञ्च कर्णाभ्यां साध्यम्। एतद्द्वयमपि स्वेनस्वेन कर्णेन साध्यमित्यर्थः। त्रिभुजेष्वेको भुजः कर्ण इति कल्प्यते त्रिभुजद्वयोरथचतुर्भुजे तस्य कर्णात्मकत्वात्। तत्र प्रथमं कर्णतुल्यां शलाकां समभूमौ निधायान्यभुजद्वयतुल्ययोश्शलाकयोरेकां शलाकां कर्णस्यैकाग्रे निधायापरां शलाकां कर्णस्येतराग्रे निधाय भुजास्यशलाकाग्रयोस्सन्धिं कुर्यात्। तदभीष्टत्रिभुजं भवति। चतुर्भुजे अपि कर्णयोरेकं प्रथमं निधाय तस्यैकपार्श्वे भुजद्वयं त्रिभुजवन्निधायापरपार्श्वे इतरभुजद्वयं त्रिभुजवन्निदध्यात्। इतरकर्णञ्च तस्मिन् कर्णस्थाने निदध्यात्। तदा कर्णद्वयाङ्कितं चतुर्भुजं भवति। अत्रैककर्णपरिग्रहेणेतरकर्णोऽपि नियमितो भवति॥ साध्या जलेन समभूः। भूमेस्समत्वं जलेन साध्यम्। भूमेस्समविषमतापरिज्ञानं जलेन भवतीत्यर्थः। एतदुक्तं भवति। चतुरसूत्रेण भूमिं समतलां कृत्वा तत्रैकं वृत्तमालिख्य तद्बहिर्द्व्यङ्गुलान्तरितं त्र्यङ्गुलान्तरितं वा वृत्तान्तरञ्च विलिख्य परिध्योरन्तरालप्रदेशं समन्तात् खात्वा कुल्यां संपाद्य तां कुल्यामद्भिः पूरयेत्। तत्र परितो जलं भूसमं चेत् भूमिस्समा भवति। यत्र जलस्य नीचत्वं तत्र भूमेरुन्नतिस्स्यात्। यत्र जलस्योन्नतिस्तत्र भूमेर्नीचत्वं स्यादिति ॥ अथ ऊर्ध्वं लम्बकेनैव। गुरुद्रव्यायद्वाग्रमवलम्बितं सूत्रमव-

शङ्कुगुणं शङ्कुभुजाविवरं शङ्कुभुजयोर्विशेषहृतम
यल्लब्धं सा छाया ज्ञेया शङ्कोस्स्वमूलाद्धि ॥ १५ ॥

शङ्कुरिष्टशङ्कुः। भुजा दीपयष्टिः। तयोर्विवरं अन्तरालभूमिः। तां शङ्कु शङ्कून्नतिमानेन निहत्य। शङ्कुभुजयोर्विशेषेण शङ्कून्नतिहीनदीपोन्नत्य भजेत्। तत्र लब्धं तस्य शङ्कोश्छाया भवति। स्वमूलादुत्पन्नच्छायामानं भवि उदाहरणम्।

द्वात्रिंशदङ्गुला दीपोन्नतिश्शङ्कुरिनाङ्गुलः।
दशाङ्गुला तद्विवरे भूमिश्छायात्र कीर्त्यताम् ॥

दीपोन्नतिः ३२। शङ्कून्नतिः १२। तयोरन्तरालभूः १०। शङ्कुभुजयोर्वि शङ्कून्नतिहीनदीपोन्नतिः। २०। लब्धं छायामानम् ६ ॥ अत्र त्रैराशिकसि दीपाग्राच्छङ्कुमस्तकमापि कर्णसूत्रं भूम्यन्तं प्रसारयेत्। अत्र क्षेत्रद्वयं भवि तयोः प्रथमे दीपमूले शङ्कुमानं हित्वा य ऊर्ध्वभागश्शिष्यते स भागो भुज भुजायाश्शङ्कुदीपान्तरालभू तुल्या कोटिः। तदा शङ्कुभुजायाः का कोटिरि शंकुमूलकर्णभूयोगयोरन्तरालकोटिसिद्धिः। सा हि तस्य शङ्कोश्छाया भवति। इति स्थानद्वयस्थापितसमशङ्कुद्वयच्छायाभ्यां छायाग्रयोरन्तरेण च दीपभुजान दीपमूलच्छायाग्रयोरन्तरालानयनश्चाह।

भा०:-इष्ट शंकु और भुज (दीपयष्टि) के अन्तर को अन्तराल (बीच की जग भूमि कहते हैं। उस अन्तराल भूमि को शंकु की उन्नति मान से गुणा करे औ शंकु मान को भुजा में से घटाकर, फल जो विशेष बची हुई-दीपोन्नति-उस भाग देवे, भागफल छाया मान होगा। उदाहरण जैसे-दीप की उन्नति ३२, शं की उन्नति १२ और उस की अन्तराल भूमि १० है, तो छाया मान क्या होगा अथ ३२ में से १२ को घटाया तो शेष २० रहा और १२×१०=१२० में २० भाग दिया तो ६ मिला, यही छाया मान हुआ ॥ १५ ॥

छायागुणितं छायाग्रविवरमूनेन भाजिता कोटी।
शङ्कुगुणा कोटी सा छायाभक्ता भुजा भवति ॥ १६ ॥

दीपादेकसूत्रगतयोश्शङ्कोश्छाययोरग्रे यत्र भवतस्तत्स्थानयोरन्तरा तयोश्छाययोरेकया निहत्य। ऊनेन छायाग्रासेन छाययोरन्तरतुल्येन विभजेत तत्र लब्धं कोटी भवति। या छाया गुणकारत्वेन परिगृहीता। तदग्रदीपमूल योरन्तरालभूमिरित्यर्थः। सा कोटी शंकुगुणिता गुणकारत्वेन परिगृहीत

द्वे वृत्ते ग्रासगुणे भाजयेत्पृथक्त्वेन ।
योगभक्ते संपातशरौ परस्परतः ॥ १८ ॥ *

...गंतयोर्यं सपरिधिभागयोर्मध्यगतमन्तरालं ग्रास इत्युच्यते ।
... वृत्तद्वयम् । पृथक्त्वेन पृथगित्यर्थः । पृथग्ग्रासमानेन गुणितं
...येत् । तत्रानुक्तं हारमनुवादरूपेण प्रदर्शयन्फलं वदति ग्रासो-
...शरावपि । तत्र ग्रासोनयोर्यं तयोर्योगेन भक्ते राशिद्वये वृत्त-
...ौ भवतः । परिधियोगद्वयगतसमस्तजीवाया मध्य उभयपार्श्व-
...ः । परस्परतः । अल्पवृत्ताल्लब्धोऽधिकवृत्तशरः । अधिकवृत्ता-
... इत्यर्थः । उदाहरणम् ।
...वारिंशन्मितं वृत्तमन्यत्षोडशसम्मितम् ।
...भागश्चतुस्संख्यस्तयोर्वाच्यौ शरौ पृथक् " ॥
...० । अन्यत् १६ । ग्रासः ४ लब्धौ लघुवृत्तशरः ३ । बृहद्वृत्तशरः १ ॥
...है ।
...और परिधि भाग के अन्तर्गत स्थान को " ग्रास " कहते हैं ।
...र, दोनों वृत्तों को अलग ग्रास-मान से गुणा कर पृथक् भाग
...वं वृत्त योग द्वारा भाग देने पर दो सम्पात शर होंगे । छोटा
...क वृत्तशर होगा एवं बड़ा वृत्त हो, तो अल्प वृत्तशर होगा ।
...-दो वृत्तों का मान ४० और ग्रास १६, और दोनों वृत्त का

... ग्रास गुण ३६ × ४=१४४, १२ × ४=४८ $\frac{१४४}{४८}$=३ $\frac{४८}{४८}$=१ ॥ १८ ॥

...कं दलितं सपूर्वमुत्तरगुणं समुखमध्यम् ।
...तमिष्टधनं त्वथवाद्यन्तं पदार्धहतम् ॥१९॥

...दर्शकमेतत्सूत्रम् ॥ अतो बहुधा योजना कार्या । तत्र म-
...धने सपूर्वमित्येतदुपनीय योज्यम् । इष्टपदमेकहीनं दलि-
...येन गुणितं मुखेनादिधनेन युतं मध्यधनं भवति । तत्-
...णितं सर्वधनं भवति । अत्रैवं सूत्रम् । इष्टं व्येकं दलितं
...तञ्च मध्यधनम् । इष्टपदेन विनिघ्नं मध्यधनं भवति सर्वधनम् ॥"

...तायां ग्रासोनयोगलब्धौ । इति पाठः । आचार्येण तु ...भक्ते
...लिखितं स्यात् ।

ति ॥ अन्त्योपान्त्याद्यभीष्टपदधनानयने तु पूर्वमुत्तरगुणं समुखमिति योजना।
ष्टपदात्पूर्वमतीतानि पदानि पूर्वशब्देनोच्यन्ते। पूर्वपदसंख्या चयगुणिता मुख-
ता इष्टधनं भवति। अत्रैवं सूत्रम्। पूर्वपदं चयगुणितं मुखसहितमिष्टधनं स्या-
। इति। अवान्तरगतेष्टपदधनानयने तु मध्यमित्येतदुपनीय क्रमेण सूत्रमि-
गुणितमिष्टधनमित्येवमन्तं योज्यम्। अवान्तरगतेष्टपदसंख्या व्येका दलिता
ष्टपदेभ्यः पूर्वमतीतपदयुता चयगुणिता मुखसहिता अवान्तरगतेष्टपदसंख्यागु-
णिता अवान्तरेष्टपदेषु सर्वधनं भवति। अत्रैवं सूत्रम्। इष्टं व्येकं दलितं सपूर्वमुत्तर-
णं समुखमिष्टगुणमवान्तरेष्टपदसंभूतं फलं भवति। इति। अत्रेष्टशब्देनावान्तरे-
पद संख्योच्यते। उदाहरणम्।

आदि पञ्च चयस्सप्त गच्छस्सप्तदशोच्यताम्।
मध्योपान्त्याष्टमादित्रि यद सर्वधनं पृथक् ॥

आदिधनम् ५। चयः ७। गच्छः १७। अत्र मध्यधनानयने इष्टम् १७। अस्मा-
दिष्टं व्येकमित्यादिना सिद्धं मध्यधनम् ६१। एतदिष्टपदेन सप्तदशभिर्निहतम्१०३७
तत्सर्वधनम्। उपान्त्यपदधनानयने इष्टम् १६। अस्मात्पूर्वपदम् १५। चयगुणितं
मुखसहितञ्च ११०। एतदुपान्त्ये षोडशपदे धनम्। अथाष्टमादिपदत्रयधनानयने
इष्टम् ३। एतद्व्येकं दलितम् १। अस्मात्पूर्वपदैस्सप्तभिर्युतम् ८। उत्तरगुणं समुखञ्च
६१। इष्टेनावान्तरपदैस्त्रिभिर्निहतम् १८३। एतदष्टमादिपदत्रये धनं भवति॥ स-
धनानयन उपायान्तरमार्यार्धेनाह। अथवाद्यन्तं पदार्धहतम्। इति। आ-
दिधनान्त्यधनयोरैक्यं पदार्धहतं सर्वधनं भवति॥ समुखमध्यमित्यत्र समुखं
मध्यमिति द्रष्टव्यम्॥ यत्र मध्यपदाभावस्तत्र मध्यात्पूर्वापरयोरुत्पन्नधनयोर्यो-
गार्धं मध्यधनं भवति॥ गच्छानयनमाह।

भा०:-अब "श्रेढीगणित" कहते हैं। अन्त्यधन लाने की रीति यह है कि-
पद (गच्छ) में से एक घटावे और शेष अङ्क को " चय " (बढ़ती) धन से गु-
णा करे और गुणन फल में " आदिधन " को जोड़े तो " अन्त्यधन " होगा
एवं इसी " अन्त्य धन " में आदि (मुख) धन को जोड़ कर योगफल को
दलित (आधा) करने से " मध्यधन " होगा। और " मध्यधन " को
पद से गुणा करने पर " सर्वधन " होगा॥

उदाहरण-जैसे आदिधन ५। चय ७। गच्छ १७। है, तो उक्त नियमानुसार १७
में से १ घटाया=१६×७=११२×५=११७ यह " अन्त्यधन " हुआ। पुनः ११७+५
=१२२ को दलित किया तो ६१ हुआ, यह "मध्यधन" हुआ, और। ६१×१७=१०३७

गच्छोऽष्टोत्तरगुणिताद्द्विगुणाद्युत्तरविशेषवर्गयुतात्।
मूलं द्विगुणाद्यूनं स्वोत्तरभजितं सरूपार्धं ॥ २० ॥

लब्धधनमत्र विशेष्यम् । सर्वधनादष्टभिर्गुणितात् । पुनरुत्तरेण चयाख्येन गुणितात् । पुनर्द्विगुणस्यादिधनस्य । उत्तरस्य चयाख्यस्य च यो विशेषस्त वर्गेण युताद्यन्मूलं तस्माद्द्विगुणमादिधनं विशोध्य। उत्तरेण चयाख्येन विभ स्। तत्र लब्धाद्रूपेणैकेन च युतादर्धं गच्छो भवति । पूर्वोदाहरणे लब्धधन १०३७ । एतदष्टभिरुत्तरेण सप्तसंख्येन च गुणितम् ५८०७२। द्विगुणमादिधनम्१ उत्तरम् ७।अनयोर्विशेषस्य वर्गेण ९ युतम् ५८०८१। अस्माज्जातं मूलम् २४१ । द्वि गुणादिधनेन १० ऊनम् २३१। एतत्स्वोत्तरेण चयेन ७ भक्तम् सरूपम् ३४ । दलित १७ । एष गच्छः ॥ एकाद्येकोत्तराङ्कानां संकलितधनानयनमाह ॥

भा:०—सर्वधन को ८ से गुणा करे और गुणनफल को पुनः चय (७ से गुणा करे और आदिधन (५) को द्विगुणित कर उस में चय(७)के सा परस्पर अन्तर करने पर जो शेष रहे उस का वर्ग करे; उसे उक्त " सर्वधन में जोड़ कर उस का वर्गमूल निकाले, एवं इस वर्गमूल में द्विगुणित आदि धन (१०) को घटावे, शेष को चय से (७) भाग देवे और भागफल में रू (१) जोड़े और योगफल को दलित (आधा) करे, यह आधी संख्या गच्छ का परिमाण होगा । उदाहरण जैसे:—

सर्वधन १०३७×८=८२९६ इस को ७ से गुणा किया तो ५८०७२ हुआ। और आदि धन ५×२=१० में से ७ घटाया तो शेष ३ रहा पुनः ३×३=९।५८०७२+९=५८०८१ इस का वर्ग मूल २४१में से१०घटाया तो २३१ रहे, इस में ७ का भाग दिया तो ३३+१=३४ इस को दलित किया तो १७ यह "गच्छ„सिद्ध हुआ ॥२०॥

एकोत्तराद्युपचितेर्गच्छाद्येकोत्तरत्रिसंवर्गः ।
षड्भक्तस्स चितिघनस्सैकपदघनो विमूलो वा ॥२१॥

एकमुत्तरमादिश्च यस्या उपचितेस्तस्या एकोत्तराद्युपचितेश्चितिघनः संक लितधनमत्र साध्यते। संकलितस्य संकलितधनमित्यर्थः। गच्छाद्येकोत्तरत्रिसंवर्गः। गच्छप्रथमराशिरेकोत्तर एकयुतो गच्छो द्वितीयो राशिः। द्वितीयोऽप्येकयुतस्तृती- यो राशिः । एषां गच्छाद्येकोत्तराणां त्रयाणां संवर्गष्षड्भक्तो यस्स चितिघनः संकलितधनं भवति । एकाद्येकोत्तराङ्कानां संकलितधनं भवति ॥ सैकपदघनो विमूलो वा । अथवा सैकानापदानां घनराशिस्सैकपदहीनष्षड्भक्तश्चितिघनो

। उदाहरणम्। पञ्च संकलिता ये स्युस्तेषां संकलितः पदगच्छः ५ । एष
थमराशिः अयमेकोत्तरः ६ । एष द्वितीयः । अयमप्येकोत्तरः ७ । एष तृतीयः ।
षां त्रयाणां संवर्गः २१० । षड्भक्तः ३५ । अयं चितिघनस्संकलितधनं भवति ॥
थवा । सैकं पदम् ६ । अस्य घनः २१६ । एष स्वमूलेन सैकपदेन ६ हीनः २१० ।
ड्भक्तश्च ३५ । एष चितिघनः ॥ वर्गघनयोस्संकलितमाह ।

प्रथम राशि को " गच्छ " कहते हैं। इस में १ जोड़ने से द्वितीय राशि
होती है, द्वितीय राशि में १ जोड़ने से तीसरी राशि होती है और इन तीनों
के संवर्ग को छः से भाग देने पर " चितिघन संकलितधन " होता है ॥
या प्रथम राशि में १ जोड़ कर इस को घन कर, घनफल में पद को घटा
कर ६ से भाग देने पर चितिघन होता है।

उदाहरण जैसेः-पद (५) प्रथम राशि ५+१=६ यह द्वितीय राशि हुई पुनः
६+१=७ यह तृतीय राशि हुई, इन तीनों का संवर्ग ५×६×७=२१० हुआ इस में ६ का
भाग देने पर ३५ रहा यह चितिघन संकलितधन हुआ। पुनः ५+१=६ पुनः
६×६×६=२१६में ६ घटाया तो २१० यथा २१० ÷ ६=३५ यह चितिघन हुआ॥२१॥

सैकसगच्छपदानां क्रमात्त्रिसंवर्गितस्य षष्ठोऽशः ।
वर्गचितिघनस्स भवेच्चितिवर्गो घनचितिघनश्च ॥२२॥

पदमेव सर्वत्र गच्छशब्देनोच्यते । सैकपदं प्रथमराशिः । सैकं सगच्छञ्च पदं
द्वितीयः । एषां त्रयाणां क्रमेण हननं कुर्यात् । एवंभूतस्य त्रिसंवर्गितस्य त्रयाणां
वर्गस्य यष्षष्ठोऽशः स वर्गचितिघनो भवेत् । वर्गाणां संकलितधनमित्यर्थः ॥
चितिवर्गो घनचितिघनश्च । चितेरेकादिसंकलितस्य यो वर्गः स घनचितिघनः।
एकादिघनानां संकलितधनमित्यर्थः । उदाहरणम् ॥ पञ्चानां वर्गघनयोः पृथक्
संकलितं वद ।

अत्र सैकपदम् ६ । इदमेव सगच्छम् ११ । केवलपदम् ५ । एषां त्रयाणां संवर्गः
३३० । षड्भक्तः ५५ । इदं वर्गसंकलितम् ॥ अथ घनसंकलिते गच्छः ५ । एकाद्येको
त्तरकल्पनया इष्टं व्येकं दलितमित्यादिसूत्रेणानीतं संकलितधनम् १५ । अस्य वर्गः
२२५ । एतत् पञ्चपर्यन्तानामेकादीनां घनैक्यम् ॥ द्वयो राश्योस्संवर्गानयन दृपा-
न्तरमाह ॥

भा०:-केवल पद में एक जोड़ने से पहिली राशि, एक युक्त पद में १ जोड़ने
से द्वितीय राशि, इन तीनों को क्रम से गुणा करे। इस प्रकार तीन बार गु-
णित का छठा भाग " वर्ग " चितिघन होता है। और एक आदि संकलित

का वर्ग "घन चिति घन" होता है—उदाहरण जैसे—एक सहित पद ५+१
गच्छ जोड़ा तो (५) ११ हुआ, केवल पद ५, इनका संवर्ग ६×११×५=३३० क
का भाग दिया तो ५५ वर्ग संकलित हुआ। गच्छ ५ संकलित धन १५×१५=
यह एक आदि पांच संख्याओं का घनैक्य हुआ ॥ २२ ॥

संपर्कस्य हि वर्गाद्विशोधयेदेव वर्गसंपर्कम्।
यत्तस्य भवत्यर्धं विद्याद्गुणकारसंवर्गम् ॥ २३ ॥

संपर्कस्य गुणगुण्यात्मकयोर्द्वयो राश्योस्संयोगस्य वर्गात् तयोरेव राश्यो
संपर्कं वर्गयोगं विशोधयेत्। तत्र यच्छिष्टं तस्य यदर्धं स गुणकारयोर्गुणगु
ण्ययो राश्योस्संवर्गो भवतीति विद्यात्। परस्परहनने हि द्वयोर्गुणकारत्वं
त्वञ्च कल्पयितुं शक्यम्। तस्मादुभौ गुणकारशब्दवाच्यौ। उदाहरणम्। "द्व
हतिंद्वयो राश्योः पञ्चसप्त समानयोः"

राश्योस्संपर्कः १२। अस्य वर्गः १४४। अस्माद्राश्योर्वर्गयोः २५। ४९। ए
योर्योगं विशोध्य शिष्टम् ७०। अस्यार्धम् ३५ पञ्चसप्तमितराश्योस्संवर्गः ॥ राश्यो
स्संवर्गे तदन्तरे च ज्ञाते राशिद्वयानयनमाह।

भा०;—गुण और गुण्यात्मक राशियों के योग के वर्ग से उन्हीं दो राशि
के वर्ग के योग में से वर्गयोग घटावे। उस में जो शेष रहे उसका आधा गु
होगा एवं गुण्यात्मक राशि का संवर्ग होगा। उदाहरण जैसे:—दो राशियों
योग १२, इस का वर्ग १४४, इस से दोनों राशियों का वर्ग क्रम से २५।४९
इस का योग ७४ को १४४ में घटाया तो शेष ७० रहे, इस का आधा ३५ हु
यह ५ और ७ राशि का संवर्ग हुआ ॥ २३ ॥

द्विकृतिगुणात्संवर्गाद्द्व्यन्तरवर्गेण संयुतान्मूलम्।
अन्तरयुक्तं हीनं तद्गुणकारद्वयं दलितम् ॥ २४ ॥

राश्योस्संवर्गात् द्विकृत्या द्वयोः कृत्या चतुस्संख्यया गुणितात् द्व्यन्तरवर्गे
द्वयो राश्योरन्तरस्य वर्गेण युताद्यन्मूलं तद्द्विधा विन्यस्य। एकस्माद्राश्यन्त
विशोधयेत्। अन्यस्मिन्नाश्योरन्तरं प्रक्षिपेत्। एवंकृतद्वयं दलितं गुणकार
भवति। उदाहरणम्।

दशाहतिस्त्रयं भेदो राश्योस्तौ ब्रूहि बुद्धिमन्।

अत्र राश्योस्संवर्गः १०। द्वयोः कृत्या गुणितः ४०। राश्यन्तरम् ३। अ
वर्गेण ९ युतम् ४९। अस्मान्मूलम् ७। अन्तरयुक्तं दलितम् ५। अयमेको राशिः॥

राशिः ७। राश्योरन्तरेण हीनं दलितम् २। अयं द्वितीयराशिः ॥ एव
शौ यदुपायान्तरादि तत्सर्वं लीलावतीव्याख्याने प्रदर्शितम्। अतस्त-
न्तव्यम्। शतादेरेकस्मिन्मासादिकाले या वृद्धिस्तत्समाने धने तथा
सति तस्माद्धनादभीष्टकाले वृद्धिसहितमूलफलानयनमाह।
:—दो राशियों के संवर्ग को ४ से गुणा करे और दोनों के अन्तर
कर उक्त गुणनफल में जोड़े और उस का वर्गमूल निकाल कर दो अ-
स्थानों में रक्खे एक में दोनों राशि के अन्तर को घटावे एवं दूसरे में
अन्तर को जोड़े, तो दो गुणकारराशि होंगी॥ उदाहरण जैसे:—
७, १०-७=३, ३×३=९। ७×७=४९ इसका वर्गमूल ७+३=१० पुनः १० को
किया तो ५ हुआ, यह एक राशि हुई। मूलराशि ७-३=४ इसको दलित
२ रहा, यह द्वितीय राशि हुई। इसी प्रकार और भी जानो॥२४॥

...लफलं सफलं कालमूलगुणमर्धमूलकृतियुक्तम्।
...लं मूलार्धोनं कालहृतं स्यात्स्वमूलफलम्॥ २५॥

...स्य शतादेरेककाले वृद्धिरूपं यद्धनं दत्तं तद्धनं मूलफलाख्यम्। सफलन-
स्ववृद्धिसहितम्। कालेनाभीष्टकालेन गुणितम्। पुनर्मूलेन प्रमाणस्या-
शतादिना च गुणितम्। मूलस्य शतादेरर्धस्य कृत्या च युतं मूलीकुर्यात्।
मूलार्धेन शतादेर्मूलस्यार्धेनोनं कृत्वाभीष्टकालेन हरेत्। तत्र लब्धं स्व-
शतादेः फलं भवति। एतस्मिन् काले वृद्धिरित्यर्थः। तदेवदत्तमूलधनञ्च
उदाहरणम्।

फलं शतस्य मासे यद्दत्तं तत्स्वफलान्तरम्।
मासषट्के षोडशकं जातं मूलफलं वद॥

मूलफलाख्यं दत्तधनं सफलम् १६। एतत् कालेन षट्संख्येनाभीष्टकालेन
९६। मूलधनेन प्रमाणाख्येन शतेन च गुणितम् ९६००। अर्धमूलकृत्या मू-
शतस्यार्धं यत् तत्कृत्या २५००। अनया युतम् १२१००। अस्य मूलम् ११०।
धनार्धेन ५०। अनेन हीनम् ६०। अभीष्टकालेन षट्केन भक्तम् १०। एत-
शतस्य मासे फलं भवति। दत्तधनञ्च तदेव॥ त्रैराशिकगणितमाह।
:—जो रुपया उधार लिया जाता उसे "मूलधन" या असल क-
हते हैं। और महाजन को दिये हुए "मूलधन" से काम लेने के ब-
जो कुछ अधिक दिया जाता उसे सूद "ब्याज" "वृद्धि" या "मूलफल"
। और ब्याज सहित धन को "सफल" या "मिश्रधन" या "सर्वधन"

कहते हैं। सर्वधन को इष्टकाल से गुणा करे, पुनः इसको मूलध
मूल (१००) के आधे को (५०) वर्ग कर उस में जोड़े और
निकाले और उस मूल को मूलधन के आधे से घटावे और इ
से भाग देवे। भागफल इष्टधन का व्याज होगा। उदाहरण
सूदसहित १६ रु० ६ मास (इष्टकाल) से गुणा करने पर ९६
से गुणा किया तो ९६०० हुआ। १०० का आधा, ५०×५
९६००+२५००=१२१०० इसका वर्गमूल ११० हुआ, इसमें मूलधन के
टाया तो ६० रहे, इसमें इष्टकाल ६ का भाग दिया तो १०
मास में १०० का व्याज हुआ ॥ २५ ॥

त्रैराशिकफलराशिं तमथेच्छाराशिना हतं
लब्धं प्रमाणभाजितं तस्मादिच्छाफलमिदं स्य

प्रमाणं फलमिच्छा चेति त्रयो राशयस्स्युः। तैर्निष्पन्नं क
त्रैराशिके यः फलाख्यो राशिस्तत्त्रैराशिकफलराशिमिच्छाख्यरा
प्रमाणाख्यराशिना भाजितं कार्यम्। एवं भाजितात्तस्माद्राशेर्य
च्छाफलं भवति। उदाहरणम्।

ताम्बूलानां शतेनाम्रदशकं लभ्यते यदि।
ताम्बूलषष्ट्या लभ्यन्ते कियन्त्याम्राणि तद्व

अत्र ताम्बूलशतं प्रमाणराशिः। आम्रदशकं फलराशिः।
च्छाराशिः। तेन गुणितात्फलात्प्रमाण लब्धं षट्संख्यं भवति।
भिन्नेषु राशिषु यो विशेषस्तमार्योर्धेनाह।

पहिली राशि को " प्रमाण राशि " दूसरी को " फलरा
सरी को " इच्छाराशि " कहते हैं। फलराशि को इच्छारा
और प्रमाणराशि से भाग देवे तो भागफल इच्छाराशि (
उदाहरण जैसे:—१०० पान में तो, १० आम आते हैं तो ६
आम आयेंगे ? ६०×१०=६००, ६००÷१००=६ आम आवेंगे
राशि हुई ॥ २६ ॥

छेदाः परस्परहता भवन्ति गुणकारभागहा

गुणकारभागहाराणां छेदाः परस्परहतास्स्फुटा भवन्ति।
गुणगुण्ययोराहतिश्च गुणकारच्छेदेन विभाजिता। हारं इत्य

हारकेण गुणितो हारको भवति। हारकस्य छेदो हार्येण गुणितो हार्यो भवति। इति गुणगुण्ययोस्सच्छेदत्वे तच्छेदयोराहतिर्हार्यस्य छेदस्स्यात्। सवर्णीकरणमुत्तरार्धेनाह।

भा०ः–" गुण " एवं "गुण्य" को परस्पर गुणा करना, यहां गुणकार शब्द से विवक्षित है। अर्थात् " हार्य "। " हार्य " के छेद " को हारक से गुणा करने पर हारक होता है। हारक के छेद को "हार्य" से गुणा करने पर हार्य होता है॥

·छेदगुणं सच्छेदं परस्परं तत्सवर्णत्वम् ॥२७॥

सच्छेदं। अंशोऽत्र विशेष्यः। छेदसहितमंशं परस्परच्छेदगुणं कुर्यात्। तदंशं तत्च्छेदञ्च स्वव्यतिरिक्तानां परेषां सर्वेषां छेदैः क्रमेण गुणितं कुर्यादित्यर्थः। तत्सवर्णत्वम्। सवर्णीकरणंतदित्यर्थः। एवं कृते सर्वे राशयस्समच्छेदा भवन्ति। तदाहरणम्।

अष्टांशकास्त्रयः पादहतास्त्र्यंशोद्धृताः कति।
गुणगुण्यहरांस्तांश्च समच्छेदान् कवे वद॥

अत्र गुण्यः $\frac{३}{८}$। गुणः $\frac{१}{४}$। अनयोर्हतिः $\frac{३}{३२}$। एष हार्यः। हारः $\frac{१}{३}$। हारकस्य छेदेन गुणितो हार्यः ९। एष हार्यः। हार्यस्य छेदेन गुणितो हारः ३२। एष हारः। एवं नवसंख्योऽत्र हार्यो भवति द्वात्रिंशत्संख्यो हारकश्च। सवर्णीकरणन्यासः $\frac{३}{८}$। $\frac{१}{४}$। $\frac{१}{३}$। अत्र गुण्यराशिस्तच्छेदश्च गुणकारहारयोश्छेदाभ्यां हतौ कार्यौ गुणकारराशिस्तच्छेदश्च गुण्यहारकयोश्छेदाभ्यां हतौ कार्यौ हारकराशिस्तच्छेदश्च गुणगुण्ययोश्छेदाभ्यां हतौ कार्यौ। तथा कृते गुण्यराशिः $\frac{३६}{९६}$। गुणः $\frac{२४}{९६}$। हरः $\frac{३२}{९६}$। एवं सर्वत्र वेद्यम्॥ व्यस्तविधिमाह।

भा०ः–छेद सहित अंश को परस्पर छेद गुण करे अर्थात् उस अंश और उस छेद को स्वकीय को छोड़ अन्यों के छेद के साथ क्रम से गुणा करे। इसी को " सवर्णीकरण " या " समच्छेद " कहते हैं। उदाहरण देखे—

गुण्य $\frac{३}{८}$ गुण $\frac{१}{४}$ इन दोनों का गुणनफल $\frac{३}{३२}$। यह " हार्य " हुआ। हार $\frac{१}{३}$

हारय के छेद के साथ गुणा करने पर हार ९ हुआ । " हार
के छेद के साथ गुणा किया तो हार ३२ यह हार हुआ । यहांपर सब न्या

$\frac{3}{8}, \frac{1}{4}, \frac{1}{3}$ । यहां गुणराशि $\frac{36}{96}$ गुण $\frac{24}{96}$ हर $\frac{32}{96}$ इसी प्रकार और भी जानो ॥

गुणकारा भागहरा भागहरा ये भवन्ति गुणकाराः ।
यः क्षेपस्सो ऽपचयो ऽपचयः क्षेपश्च विपरीते ॥ २८ ॥

दृश्यराशिनोद्दिष्टराश्यानयने व्यस्तविधिः क्रियते । उद्दिष्टराशौ यो गु
कारस्स भागहारः । हारो गुणः । क्षेपो ऽपचयः । अपचयः क्षेपस्स्यात् ।
विपरीते व्यस्तविधौ भवति । अनुक्रमव्यनेनैव सिध्यति वर्गं मूलं मूलीक
वर्गीकरणमित्यादि । उदाहरणम् ।

कश्चिद्गुः पञ्चभिर्भक्तष्षड्भिर्युक्तः पदीकृतः ।
एकोनो वर्गितो वेदसंख्यस्स गणकोच्यताम् ॥

दृश्यम् ४ । वर्गीकृतत्वात्पदीकृतः २ । एकोनत्वादेकयुतः ३ । पदीकृतत्वा
र्गितः ९ । षड्भिर्युतत्वात्तैर्हीनः ३ । पञ्चभिर्हृतत्वात्पञ्चभिर्गुणितः १५ । त्रिभि
र्गुणितत्वात्त्रिभिर्भक्तः ५ । एष उद्दिष्टराशिः ॥ यत्र बहवस्संघास्स्युः । तत्रैक
संघस्यास्य क्षेपसंघानां संख्याश्च गणितास्स्युः । तत्र सर्वसंख्यानां योगसंख्या
यनमाह ।

भा०:—"दृश्यराशि" द्वारा "उद्दिष्टराशि" के लाने को "व्यस्तविधि"
कहते हैं । उद्दिष्ट राशि में जो गुणकार, वह भाग हार होता है । हार गु
होता, क्षेप अपचय होता और अपचय क्षेप होता है इसप्रकार विपरीत व्य
विधि में होता है । उदाहरण जैसे—दृश्य ४ इस का मूल २, १ कम करने से
३, ३ का वर्ग ९ इसमें से छः घटाने से ३ । ३ को ५ से गुणा किया तो १५ हुआ,
इसमें ३ का भाग दिया तो यही उद्दिष्ट राशि हुई ॥ २८ ॥

राश्यूनं राश्यूनं गच्छधनं पिण्डितं पृथक्त्वेन ।
व्येकेन पदेन हृतं सर्वधनं तद्भवत्येव ॥ २९ ॥

राश्यूनं राश्यूनम् । एकैकसंघहीनं संघैक्यं कृत्वा तत्तत्संघयोगं गच्छाख्यं धनं
पृथक्त्वेन स्थापितं संघतुल्यस्थानेषु स्थानेषु स्थापितं यत् तत्पिण्डितं कृत्वा ।
लेपामैक्यं कृत्वा । व्येकेन पदेन । एकसंघहीनेतरसंख्यया । हृतेऽत्र तत्र लब्धं यत्
तदेव सर्वधनं भवति । सर्वेषां संघधनानामैक्यमित्यर्थः । तस्मात्सर्वधनात्पूर्वं
स्थापितराश्यूनसंघधनेषु कैकस्मिन्विशोधिते सति शिष्टमेकैकसंघधनं भवति ।

प्रथमस्य रूपकमानम् १०० । गुलिकाख्यगोमानम् ६ । द्वितीयस्य रूपकमानम् ६० । गुलिकाख्यगोमानम् ८ । अत्र रूपकान्तरम् ४० । एतद्गुलिकान्तरेण २। अनेन भक्तम् २० । एतद्विंशतिसंख्यमेकैकगोमूल्यम् । अत्रैकैकस्य विंशत्यधिकं शतद्वयं रूपकं भवति ॥ ग्रहान्तराद्ग्रहयोगकालानयनमाह ।

भा०:-गौ आदि द्रव्य का नाम "गुलिका" और स्वर्ण आदि द्रव्य के पण आदि का नाम "रूपक" है दो रूपक संज्ञक द्रव्यों में जो विशेष हो उस में न्यून को घटाकर शेष से भाग देवे, भागफल एक २ गौ का मूल्य होगा। जहां दोनों पुरुषों को अपने २ गौ के मूल्य का योग तुल्य हो वहां यह नियम होगा। उदाहरण जैसे—एक पुरुष के पास १००) रुपये एवं ६ गौ और दूसरे पुरुष के पास ६०) रुपये एवं ८ गौ, तो प्रत्येक गौ का मूल्य क्या होगा? रुपये १००–६० रु०=४० रु० । और ८ गौ में से ६ गौ० घटाया तो शेष २ रहे। ४० ÷ २ =२० रु० प्रति गौ का मूल्य वीस वीस रु० हुआ । और प्रत्येक पुरुष को १००+१२०=२२० रुपये, १६०+६०=२२० रुपये हुये ॥ ३० ॥

भक्ते विलोमविवरे गतियोगेनानुलोमविवरे द्वे ।
गत्यन्तरेण लब्धौ द्वियोगकालावतीतैष्यौ ॥ ३१ ॥

विलोमयोर्वक्रयोर्ग्रहयोर्विवरे स्फुटान्तरे द्वे लिप्तीकृते तयोर्गतियोगेन वक्रस्पष्टगत्योर्योगेन लिप्तीकृतेन भक्ते कार्ये। अनुलोमयोर्वक्रिणोर्द्वयोरवक्रिणोर्द्वयोर्वा विवरे द्वे गत्यन्तरेण वक्रगत्योर्वा स्पष्टगत्योर्वान्तरेण भक्ते कार्ये। द्वे इतिवचनमन्तरस्य द्वैविध्यात्। शीघ्रगतिहीनो मन्दगतिरन्तरं भवति। मन्दगतिहीनश्शीघ्रगतिर्वान्तरं भवति। इति द्वैविध्यम्। तत्र हरणे लब्धौ द्वौ द्वियोगकालौ। द्वयोर्ग्रहयोर्योगकालौ दिनात्मकौ। अतीतैष्यौ भवतः। शीघ्रगतिरग्रतो गच्छति चेदतीतस्स कालः। मन्दगतिरग्रतो गच्छति चेदेष्यस्स कालः। विलोमे तु ऊर्ध्वगतो वक्री चेदेष्यः। अन्यथातीतः॥ अथ कुट्टाकारगणितमदर्शनार्थमार्याद्वयमाह ।

भा०:-जिन दो ग्रहों का "योग" जानना हो, उन में से यदि शीघ्रगामी ग्रह की अपेक्षा अधिक हो तो "योग" गत हुआ (इष्ट काल से पहिले) और मन्दगामी ग्रह शीघ्रगामीग्रह की अपेक्षा अधिक हो तो "योग" भावी (इष्ट काल से पीछे) जानना। यह नियम दो पूर्वगामी ग्रहों के लिये है और वक्र गामी ग्रहों का सो उसके उलटा होता है। अर्थात् वक्री (टेढ़ा चलने वाला) मन्दगामी ग्रह की अपेक्षा वक्रीशीघ्रगामीग्रह अधिक हो तो

तस्य प्रथमहरणं विहितम्। यदा प्रथममेवाल्पो भाज्यस्तदा तस्य प्रथमहरणं न कार्यम्। परस्परहरणे तत्तत्फलञ्चाधोऽधः क्रमेण स्थाप्यं यथा फलवल्ली भवति। परस्परभक्तमितिवचनात्फलग्रहणमप्यभिहितं भवति। अन्यस्मादन्यस्माच्च भक्तं फलं हि परस्परभक्तं तत्स्थाप्यमिति शेषः। यावद्भक्ते शेषयोरल्पत्वान्मतिः कल्प्या भवति। तावदेवं परस्परहरणं तत्फलास्थापनञ्च कार्यम्। परस्परहरणस्य द्विष्टत्वात्फलपदानां समत्वे परस्परहरणं समाप्यते। अतस्समपद एव मतिः कल्प्यते। मतिगुणमग्रान्तरे क्षिप्तम्। भाज्यशेषे यया संख्यया निहते तस्मिन् क्षेप्यराशिं प्रक्षिप्य वा तस्माच्छोध्यराशिं विशोध्य वा भाजकशेषेण हृते निरशेषो भवति भाज्यशेषः सा संख्या मतिर्भवति। अत्राग्रयोरन्तरं क्षेप्यराशिस्स्यात्। तां मतिं बुद्ध्या प्रकल्प्य तया भाज्यशेषमल्पसंख्यं निहत्याग्रयोरन्तरे क्षेप्यसंज्ञिते प्रक्षिप्याधिकसंख्येन भाजकशेषेण निरशेषं हृत्वा फलं गृह्णीयात्। पुनस्तां मतिं फलपदानामधो विन्यस्य तस्या अधस्ताल्लब्धञ्च विन्यसेत्। मतिकल्पनायास्सुकरत्वापादनाय हि परस्परहरणं विधीयते। तन्निवृत्तये पुनरप्यधः परिगुणितमन्त्ययुगित्यादिना वल्ल्युपसंहारश्च विहितः। अतो निरशेषहरणात् फलं ग्राह्यमिति सिद्धम्। अथ गतिश्च। अधउपरिगुणितमन्त्ययुगितिवचनाद्य उपशब्देनोपान्त्यपदं गृह्यते। उपान्त्यपदेन स्वोर्ध्वपदं निहत्य तस्मिन्नन्त्यपदं प्रक्षिपेत्। पुनरप्येवं कुर्याद्यावद्द्वावेव राशी भवतः। तत्र राश्योरुपरिस्थ एव ग्राह्यः। ऊनाग्रच्छेदभाजिते शेषं अधिकाग्रच्छेदगुणं द्विच्छेदाग्रमधिकाग्रयुतम्। द्वयो राश्योरुपरिस्थितं राशिमूनाग्रच्छेदेन हरेत्। तत्र शिष्टमधिकाग्रच्छेदेन निहत्य तस्मिन्नधिकाग्रं प्रक्षिपेत्। स द्विच्छेदाग्रराशिर्भवति। पूर्वोक्तभाज्यद्वय[illegible] गुणकार इत्यर्थः। निरग्रेऽप्येवमेव विधिः। किन्तु तत्र मतिकल्पनायां [illegible] शोध्याख्यः। [illegible] क्षेप्याख्यः। राशिद्वये तत्र उपरिस्थराशिं भाजकेन हरेत्। तत्र शेषो गुणकारोऽहर्गणादिस्स्यात्। अपरं राशिं भाज्येन हरेत्। तत्र शेषो लब्धं भगणादिग्रहणं फलं स्यात्। अधिकाग्रच्छेदगुणमित्यादिको विधिरत्र न भवति। अथेयं वा योजना। अधिकाग्रभागहारं [illegible] इति। अधिकाग्रभागहारशब्देनाधिक[illegible] [illegible]। [illegible] परस्परहरणे भाजकत्वं [illegible]। [illegible] [illegible]। [illegible]। [illegible]। [illegible] कार्यम्। [illegible]

व्याख्याया सिद्धान्तदीपिकाख्यायां विस्तरेण प्रदर्शितम्। तस्मादिहा भिरनादृतम्।

भा०:-कुट्टाकार गणित (इनडिटरमिनेट इक्वेशन) दो प्रकार का होता एक को "निरग्र कुट्टाकार" एवं दूसरे को "साग्र कुट्टाकार" कहते हैं। कि गुणाकार से गुणा कर, भाजक द्वारा भाग देने पर जो शेष रहता, शेष एवं भाज्य, भाजक द्वारा "उक्त शेषप्रदगुण कारराशि" के लाने लिये जो कर्म किया जाता उसे "निरग्र कुट्टाकार" कहते हैं। इस प्रक लाया हुआ वह गुण कार, यदि "पूर्व गुणकार" से भिन्न हो तो उस "स्वहार" देने से "पूर्व गुणाकार" सिद्ध होता है। जहां एक ही राशि दो भाज्य गुणित हों एवं दो भाजक से भाग देने पर जो शेष रहता, वहां उ से एवं भाज्य, भाजक से उन २ के दोनों "छेद" एवं दोनों "गुणकार निरग्रविधि" से लाने पर यदि दोनों गुण कार भिन हों तो उन से ए उन के दोनों हारकों से "पूर्वगुणाकार" लाने के लिये जो कर्म शेष रहत उस का नाम "साग्र कुट्टाकार" है। और दोनों शेषों से जो दो गुणका लाये गये, उन में से जो अधिक होता उसे "अधिकाग्र" एवं जो न्यून होता उसे "ऊनाग्र" कहते हैं ॥ ३२। ३३ ॥

इति पारमेश्वरिकायां भटदीपिकायां गणितपादो द्वितीयः॥

अथ कालक्रियापादः प्रदर्श्यते। तत्र कालविभागमाह।

वर्षं द्वादश मासास्त्रिंशद्दिवसो भवेत्स मासस्तु।
षष्टिर्नाड्यो दिवसष्षष्टिस्तु विनाडिका नाडी ॥ १ ॥

एकं वर्षं द्वादश मासा भवन्ति। त्रिंशद्दिवसा यस्मिन् स त्रिंशद्दिवसः। मासस्त्रिंशद्दिवसस्स्यात्। एको मासस्त्रिंशद्दिवसा भवतीत्यर्थः। एको दिवसष्- ष्टिर्नाड्यो भवति। एका नाडी षष्टिर्विनाडिका भवति। सौरसायनचान्द्रादि- संज्ञितेषु वर्षेषु तत्तद्वर्षकालाद्द्वादशांशस्तत्तन्मासकालः। एवं स्वमानवशात्त- द्दिननाड्यादिकाला ग्राह्याः। कालभेदा नवविधा उक्ताः।

"ब्राह्मं पित्र्यं तथा दिव्यं प्राजापत्यञ्च गौरवम् ॥
सौरञ्च सावनं चान्द्रमार्क्षं मानानि वै नव ॥"

इति-नवप्रभेदभिन्नकालतुल्यस नाक्षत्राख्यदिनसावयवभूताया नाडिकायाः कालमापर्थेन प्रदर्शयति।

भा०—एक वर्ष में १२ महीने होते हैं, एक मास में ३० दिन, एक दि
नाड़ी, एक नाड़ी में ६० विनाडी होती हैं। सौर, सावन, चान्द्र, आ
क वर्षों में उस २ वर्ष के बारह २ महीना आदि उक्त प्रकार जानना
मान ९ प्रकार का होता है:—जैसा (कि सूर्य सिद्धान्त में लिखा है)—
य,२पित्र्य,३ दिव्य, ४ प्राजापत्य, ५ बार्हस्पत्य, ६ सौर, ७ सावन, ८
र ९ नाक्षत्र, ये नव प्रकार के कालमान हैं ॥ १ ॥

गुर्वक्षराणि षष्टिर्विनाडिकार्क्षी षडेव वा प्राणाः ।

यावता कालेन षष्टिर्गुर्वक्षराण्युच्चरति मध्यमया वृत्त्या पुरुषः ।
काल आर्क्षी विनाडिका। ऋक्षसंबन्धिनी विनाडिका । ऋक्षाणामाभ
मण्डलं यावता कालेन परिभ्रमति । स काल आर्क्षो दिवसः। तस्य षष्ट्यं
ी नाडिका । तस्याप्यष्ट्यंश आर्क्षी विनाडिका सेयमित्यर्थः । षडेव वा
यावता कालेन पुरुषष्षडुच्छ्वासान् करोति। तावान्कालश्चार्क्षी विनाडिका
यपि कालौ तुल्यावित्यर्थः ॥ कालविभाग एवं प्रदर्शितः । क्षेत्रविभाग
यवदित्युत्तरार्धेनाह: ।

भा०:—जितने समय में ६० गुरु (दीर्घ) अक्षर का उच्चारण पुरुष
त्त से करता उतने काल को नाक्षत्रिक विनाडिका कहते हैं।एक रात्रि
ध्यान्हिक रेखा पर कोई स्थिर तारा दीख पड़े—उस समय से उस
ात्रि को उसी रेखा पर उक्त तारा दीख पड़े, उतने समय को ना
अहोरात्र कहते हैं। इस के ६० वें अंश को नाक्षत्रनाडिका कहते हैं । न
के ६० वें भाग को विनाड़िका कहते हैं। जितने काल में पुरुष छः श्वास
उतने काल को नाक्षत्रिक विनाडिका कहते हैं । अर्थात् ६० गुरु अक्षर
रिमाण एवं ६ श्वास के परिमाण से—जो काल होता वह परस्पर
होता है ।

एवं कालविभागः क्षेत्रविभागस्तथा भगणात् ॥ २

वर्षात्कालविभाग एवमुक्तः । भगणात्क्षेत्रविभागोऽपि तथा ज्ञेयः
दुक्तं भवति । द्वादशांश एको राशिर्भवति । राशेस्त्रिंशांश एको भागः ।
षष्ट्यंश एका लिप्ता । लिप्तायाप्यष्ट्यंश एका विलिप्ता । विलिप्ता
ष्ट्यंश एका तत्परा । इति भगणादयः क्षेत्रात्मकाः । वर्षादयः काला
राशिचक्रे चरतोर्द्वयोर्ग्रहयोर्युगे योगसंख्याज्ञानमार्याधेनाह ।

भा०:-इसी प्रकार भगण के क्षेत्रविभाग जानना। १२ अंग की १ राशि के ३० वें भाग को १ भाग, १ भाग के ६० वें भाग को १ लिप्ता, १ लि० के ६० वें भाग को १ विलिप्ता, १ विलिप्तिका के ६० वें भाग को १ त० कहते हैं ॥ २ ॥

भगणा द्वयोर्द्वयोर्ये विशेषशेषा युगे द्वियोगास्ते।

द्वयोर्द्वयोर्ग्रहयोर्या युगभगणसमूहौ तयोर्द्वयोर्विशेषशेषाः। द्वयोर्भगणसमूहे रधिकादल्पे विशोधिते शिष्टा ये भगणास्ते युगे द्वियोगाः। द्वयोर्ग्रहयोर्युग योगसंख्या भवति। तुल्यकालं मण्डलमारुह्य मन्दशीघ्रगतिभ्यां चरतोर्ग्रहयोः योगो भवति। तदा हि शीघ्रगतेरेकपरिवर्तनाधिक्यं स्यात्। अतः परिवर्तनान्तरतुल्या मण्डले चरतोर्ग्रहयोर्योगास्स्युः॥ युगे व्यतीपातसंख्यामपरार्धेनाह

भा०:—दो ग्रहों का जो युगभगणसंख्या हो, उन दोनों के विशेष अर्थात् दोनों भगण समूह से अधिक से अल्पन्त को घटाने पर जो शेष रहे वही युग में 'द्वियोग', होगा। दोनों ग्रहों की चतुर्युग में योगसंख्या होगी। तुल्य काल में मण्डल से चलकर मन्द और शीघ्र गति से चलते हुए दो ग्रहों का जब योग होता है, तब शीघ्र गति से एक का परिवर्त्तन अधिक होता, अतएव परिवर्त्तनान्तर तुल्य से मण्डल में चलते हुए ग्रहों के योग होते हैं।

रविशशिनक्षत्रगणास्संमिश्राश्च व्यतीपाताः ॥ ३ ॥

रविशशिनोर्नक्षत्रगणा युगे यावन्तः प्रथमं रविभगणं गणयित्वा पुनश्शशिभगणे च गणिते यावन्त इत्यर्थः। सम्मिश्राश्च। पुनर्द्वयोर्भगणैक्ये च गणिते यावन्तस्तावन्तो युगे व्यतीपाता भवन्ति। रविशशिनोर्भगणैक्यद्विगुणतुल्या इत्यर्थः। अत एतदुक्तं भवति। रविशशिनोर्योगे चक्रार्धे एको व्यतीपातस्स्यात् पुनस्तयोर्योगे चक्रे द्वितीयो व्यतीपातस्स्यात्। इति। इह स्थूलतया व्यतीपात उक्तः। सूक्ष्मस्तु मयेनोक्तः।

> "एकायनगतौ स्यातां सूर्याचन्द्रमसौ यदा।
> तद्युतौ मण्डले क्रान्त्योस्तुल्यत्वे वैधृताभिधः॥
> विपरीतायनगतौ चन्द्रार्कौ क्रान्तिलिप्तिकाः।
> समास्तदा व्यतीपातो भगणार्धे तयोर्युतिः॥" सू० सि०

इति। अत्रापि मण्डलभगणार्धशब्दाभ्यां सूर्याचन्द्रमसोर्भिन्नगोलता तुल्यगोलता च क्रमादभिहिता। इति वेद्यम्॥ उदनीचवृत्तस्य परिवर्तमार्यार्धेनाह।

भा०:–जब सूर्य्य और चन्द्रमा भिन्न २ अयन में होते एवं दोनों
राशि आदि जोड़ने से ६ राशि की बराबर हो, तो व्यतीपात नाम
होता है। युग में जितने सूर्य्य के भगण हों, उनको प्रथम गिने पुनः चन
भगण को गिनने पर जितने भगण हों, दोनों को जोड़ें और योगफल
हो युग में उतने व्यतीपात नामक पात जानना ॥ ३ ॥

स्वोच्चभगणास्स्वभगणैर्विशोपितास्स्वोच्चनीचपरिव

उच्चभगणस्वभगणयोरन्तरं स्वोच्चनीचपरिवर्तः । इत्यर्थः । चन्द्रस्य
णस्वभगणयोरन्तरं मन्दोच्चनीचपरिवर्तः। इतरेषान्तु पण्णां मन्दोच्चस्य
स्स्वभगणा एव मन्दनीचोच्चपरिवर्ताः । कुजादीनां पञ्चानां शीघ्रोच्चभग
गणान्तरं शीघ्रोच्चनीचपरिवर्तस्स्यात् । सर्वे ग्रहास्स्वोच्चस्य परितो भ्र
सत्रोच्चासन्ने ग्रहे स्वोच्चत्वमुच्चस्य सप्तमस्थाने नीचत्वञ्च । तद्भ्रमणमत्रो
परिवर्त इत्युच्यते । तत्र मन्दोच्चादनुलोमेन भ्रमणं शीघ्रोच्चात्प्रतिलोमेन
स्वोच्चनीचपरिवर्ता अत्रोक्ताः । द्वियोगन्यायसिद्धस्यास्य पृथगभिधानं
मुच्चनीचपरिवर्तप्रदर्शनाय ॥ गुरुवर्षाण्यपरार्धेनाह ।

भा०:–अपने उच्चभगण को स्वभगण से घटाकर शेष स्वोच्च नीच
होगा। चन्द्रमा का उच्चभगण और स्वभगण का अन्तर मन्दोच्च नी
वर्त है। इतर छः ग्रहों का शीघ्रोच्चभगण स्वभगणान्तर–शीघ्रोच्च नी
वर्त होगा। सब ग्रह अपने २ उच्च के चारों ओर भ्रमण करते हैं।

गुरुभगणा राशिगुणास्त्वाश्वयुजाद्या गुरोरब्दाः ॥

गुरोर्भगणा राशिगुणा द्वादशभिर्गुणिता युगे आश्वयुजाद्या अब्दा
अत्र वराहमिहिरः ।

> "नक्षत्रेण सहोदयमस्तं वा याति येन सुरमन्त्री ।
> तत्संज्ञं वक्तव्यं वर्षं मासक्रमेणैव ॥
> वर्षाणि कार्त्तिकादीन्याग्नेयाद्भद्वयानुयोगीनि ।
> क्रमशस्त्रिभन्तु पञ्चममुपान्त्यमन्त्यञ्च यद्वर्षम् ॥" बृ० संहिताया

इति । मासक्रमेण कार्त्तिकादिमासक्रमेण वर्षक्रम इत्यर्थः ॥ मंरिचा
वननाद्यन्नमानियभागमाह ।

भा०:–बृहस्पति के भगण को १२ से गुणन कर–गुणनफल युग में
आदि बार्हस्पत्यवर्ष होगा ॥ ४ ॥

रविभगणा रव्यब्दा रविशशियोगा भवन्ति शशिमासाः।
रविभूयोगा दिवसा भावर्ताश्चापि नाक्षत्राः ॥ ५ ॥

यावता कालेन रवेर्भगणपरिवृत्तिस्तावत्कालो रव्यब्दाः। यावता कालेन रविशशिनोर्योगस्स्यात् तावत्कालश्चान्द्रमासः। एककालमारुह्य गच्छतोः पुनर्योगकाल इत्यर्थः। रविभगणतुल्या युगे रव्यब्दाः। युगे रविशशियोगतुल्या युगे चान्द्रमासाः। रविभूयोगशब्देन रवेर्भूपरिभ्रमणमभिहितम्। युगे रवेर्भूपरिभ्रमणतुल्या युगे भूदिवसाः। सावनदिवसा इत्यर्थः। युगे यावन्तो भावर्ता नक्षत्रमण्डलस्य परिभ्रमणानि तावन्तो–युगे नाक्षत्रदिवसाः। अत्र भचक्रभ्रमणादि नाक्षत्रदिवसा उक्ताः। ननु चन्द्रगतिसिद्धाः ॥ अधिमासावमदिनान्याह।

भा०–जितने काल में सूर्य का भगण पूरा होता है उतने काल को 'सौर वर्ष' कहते हैं। जितने काल में सूर्य्य और चन्द्रमा का योग होता है उतने काल को "चान्द्रमास" कहते हैं। तुल्य समय में चलने से पुनः योग काल होता है। सूर्य्यभगण के तुल्य युग में सौरवर्ष होते हैं। युग में सूर्य और चन्द्रमा के योग की बराबर युग में चान्द्रमास होते हैं। युग में सूर्य से पृथिवी भ्रमण के तुल्य सावन या भूदिवस होते हैं। युग में जितने नक्षत्र मण्डल का आवर्त्त अर्थात् भ्रमण होता, उतने ही युग में नाक्षत्र दिवस होते हैं ॥ ५ ॥

अधिमासका युगे ते रविमासेभ्यो ऽधिकास्तु ये चान्द्राः
शशिदिवसा विज्ञेया भूदिवसोनास्तिथिप्रलयाः ॥ ६ ॥

युगरविमासहीना युगचान्द्रमासा युगेऽधिमासास्स्युः। युगभूदिवसोना युगचान्द्रदिवसा युगे तिथिप्रलयाः। अवमदिवसा इत्यर्थः मनुष्यपितृदेवानां संवत्सरप्रमाणमाह।

भा०:–युग के सौरमास से युग के चान्द्रमास को घटाने पर युग में अधिमास की संख्या निकल आवेगी। युग के सौरमास से युग के चान्द्र दिन घटाने पर युग में तिथि क्षय अर्थात् अवम वा क्षय दिन होंगे ॥ ६ ॥

रविवर्षं मानुष्यं तदपि त्रिंशद्गुणं भवति पित्र्यम्।
पित्र्यं द्वादशगुणितं दिव्यं वर्षं समुद्दिष्टम् ॥ ७ ॥

रविवर्षं मानुष्यं वर्षं भवति। (मानुष्यं वर्षं त्रिंशद्गुणितं पित्र्यं वर्षं भवति)। पित्र्यं वर्षं द्वादशगुणितं दिव्यं वर्षं भवति। अत्र सौरमानेन विध्यमुदितं शास्त्रान्तरे तु चान्द्रेणोदितम्। तथाच मयः

त्रिंशता तिथिभिर्मासश्चान्द्रः पित्र्यमहः स्मृतम्। सू० सि०

इति॥ ग्रहाणां युगकालं ब्राह्मदिनकालञ्चाह।

भा०:-सौर वर्ष को मानुष्य वर्ष भी कहते हैं। मानुष्य वर्ष को ३० से गुणन करने पर पित्र्यवर्ष होता है। और पित्र्यवर्ष को १२ से गुणन करने पर दिव्यवर्ष होता है। यहां सौरमान से पित्र्यदिन कहा है परन्तु सूर्यसिद्धान्त आदि ग्रन्थों में चान्द्रमान से कहा गया है॥७॥

दिव्यं वर्षसहस्रं ग्रहसामान्यं युगं द्विषट्कगुणम्।
अष्टोत्तरं सहस्रं ब्राह्मो दिवसो ग्रहयुगानाम्॥ ८

दिव्यं वर्षसहस्रं द्विषट्कगुणं द्वादशगुणितं ग्रहसामान्यं युगं भवति। सर्वेषां ग्रहाणां युगमित्यर्थः। युगादौ सर्वेषां ग्रहाणां मण्डलादिगतत्वात्तेषां मध्यमानयने युगविशेषो नास्तीति सामान्यशब्देन द्योतितम्॥ कालस्योत्सर्पिण्यादिविभागमाह।

भा०:-१००० दिव्यवर्ष को १२ से गुणन कर गुणनफल ग्रह सामान्य युग होगा। अर्थात् सब ग्रहों का युग होगा। युग की आदि में सब ग्रहों को मण्डल के आदि में होने से इन के मध्यानयन में कोई युग विशेष नहीं है॥८॥

उत्सर्पिणी युगार्धं पश्चादवसर्पिणी युगार्धञ्च।
मध्ये युगस्य सुषमादावन्ते दुष्षमेन्दूच्चात्॥ ९॥ *

अस्यार्थो व्याख्याकारेण न प्रदर्शितः। अतो भटप्रकाशिकायां यदुक्तं तदत्र लिख्यते। यस्मिन् काले प्राणिनामायुर्यशोवीर्यादीन्युपचीयन्ते स काल उत्सर्पिणीसंज्ञः। यस्मिन्नपचीयन्ते सोऽवसर्पिणीसंज्ञः। युगस्य पूर्वार्धमुत्सर्पिणीकालः। अपरार्धमवसर्पिणीकालः। युगस्य मध्यमत्र्यंशः समकालः। आद्यन्तौ (सुषमा) दुष्षमासंज्ञौ त्र्यंशौ। एतत्सर्वमिन्दूच्चात्प्रभृति प्रतिपत्तव्यम्। अस्यार्थोऽभियुक्तैर्निरूप्य वक्तव्यः। इति प्रकाशिकायां व्याख्यानम्। अत्र इन्दूच्चात्प्रभृति प्रतिपत्तव्यमित्यनेन किमुक्तमिति न जानीमः। उक्तार्थस्य ग्रहगणितोपयोगित्वमपि न पश्यामः। एवं त्वर्थः। इन्दूच्चात्प्रभृति गतिमतां गतिर्युगार्धे उत्सर्पिणी। अपरार्धेऽवसर्पिणी मध्ये समा च। मध्यकालायास्त्विदाटिमद्देशादूर्ध्वमधो वा ग्रहाणामवस्थितिर्युगान्तयोर्भवति। अतो मध्यमगतेर्भेदस्यात्। तस्मात्काले-काले निरूप्य मध्यमसंस्कारः कार्य इत्यर्थः। अथवा।

* भटदीपिकापुस्तकद्वये सुषमा चादावन्ते च दु० इत्यपपाठः।

चन्द्रूचात्प्रभृति यान्युचानि मन्दोच्चानि शीघ्रोच्चानि च भवन्ति तेषां यावी
तिः । सा उत्सर्पिणी समा च स्यात् । मध्ये काले यत्रावस्थितिरुच्चानां भव
तस्मात्प्रदेशादूर्ध्वमधो वा युगाद्यन्तयोरेव स्थितिर्भवतीत्यर्थः । तेन वृत्तभे
रस्यात् वृत्तभेदात् स्फुटभेदस्स्यात् । अतः—काले काले निरूप्य वृत्तसंस्का
कार्य इत्यर्थः । इति । शास्त्रप्रणयनकालं तत्काले स्ववयःप्रमाणञ्च प्रदर्शयति

भा०ः—इस का अर्थ व्याख्याकार ने नहीं किया; इस लिये भटप्रकाशि
में जैसे लिखा है उसी प्रकार-भावार्थ यहां लिखा जाता है, जिस समय प्राणि
की आयु, यश, वीर्य्य आदि की वृद्धि होती है उस काल को "उत्सर्पिणी
काल कहते हैं और जिस समय प्राणियों के आयु वीर्य्य आदि का ह्रास होत
है, उसे 'अपसर्पिणी' काल कहते हैं । युग के पूर्वार्द्ध को उत्सर्पिणी और अ
परार्द्ध को अपसर्पिणी कहते हैं । युग के मध्यम त्र्यंश को सम काल कहते हैं
आदि और अन्त को (सुषमा) दुष्षमा त्र्यंश कहते हैं, इन सब को "इन्
चात् प्रभृति प्रतिपत्तव्यम्" इस वाक्य से क्या अभिप्रेत है सो नहीं ज्ञात होत
और न इस पूरे सूत्र से गणित में प्रयोजन ज्ञात पड़ता है ॥ ९ ॥

षष्ट्यब्दानां षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः ।
त्र्यधिका विंशतिरब्दास्तदेह मम जन्मनो ऽतीताः ॥ १० ॥

इह वर्तमानेऽष्टाविंशे चतुर्युगे चतुर्भागत्रय षष्ट्यब्दानां षष्टिश्च यदा गता
भवन्ति । तदा मम जन्मनः प्रभृति त्र्यधिका विंशतिरब्दा गता भवन्ति । वर्त
मानयुगचतुर्थपादस्य षट्शताधिकसहस्रत्रयसम्मितेषु सूर्याब्देषु गतेषु सत्सु त्र
योविंशतिवर्षेण मया शास्त्रमिदं प्रणीतमित्युक्तं भवति । अत्राह प्रकाशिका
कारः । अस्यायमभिप्रायः । अस्मिन् काले गीतिकोक्तभगणैस्त्रैराशिकेनानीता
ग्रहमध्यमोच्चपातास्स्फुटास्स्युः । इत उत्तरं तथानीतेषु तेषु सम्प्रदायविद्संस्
स्कारः कार्यः । इति । तथाच तच्छिष्यो लल्लाचार्यः ।

"शाके नखाब्धिरहिते शशिनोऽक्षदस्रै—
स्तत्तुङ्गतः कृतशिवैस्तमसष्षडङ्कैः ।
शैलाब्धिभिस्सुरगुरोर्गुणिते सितोच्चा—
च्छोध्यं त्रिपञ्चकुहृतेऽम्बरलोचनैश्च ।
सम्येरमाम्बुधिहृते क्षितिनन्दनस्य—
सूर्यात्मजस्य गुणितेऽम्बरलोचनैश्च ।

व्योमाग्निवेदनिहते विदधीत लब्धम्।
शीतांशुसूनुकुजमन्दकलासु वृद्धिम्॥" धीवृद्धिदतन्त्रे।

इति। अभ्रशराक्षितुल्यस्सर्वेषां हारकः कुजशनिशशीघ्रकलासु वृद्धिर्योज्ये पकलास्वशोध्यम्। एष संस्कारश्शकाब्दाश्याज्जातीव भिन्नः। अत्र शकाब्दा-न्द्रयमाब्धिशोधनं मुक्तं तदनुक्तम्। नखाब्धिशोधनं यदुक्तं तदुक्तिस्सौकर्या-ति वेद्यमिति प्रकाशिकाकारेणोक्तम्। अयनसंस्कारश्च प्रदर्शितः।

"कल्यब्दात् खखषट्कृतिहीनाद्वसुशून्यनागशरभक्तात्।
शेषे द्विबाणशक्रैः पदं भुजाब्दा द्विसंगुणिताः॥
शशिसूर्यहृता लब्धं भागादिफलं भुजाफलवत्।
अयधनमयनध्रुवयोः कुर्यात्ते दृक्समे भवतः॥"

इति। पदप्रदेशेषु द्विबाणशक्राब्देषु गतभाग ओज पदे भुजाब्दः। युग्मपदे ष्येभ्यो भुजाब्दः। भुजाफलवत्। मेषादावृणं तुलादौ धनमित्यर्थः। अयनद्वय-ध्रुवमो राशित्रये राशिनवके चर्णधनमित्यर्थः। तथाभूतेऽर्केऽयनावसानमित्युक्तं यति। युगाद्यारम्भकालसाम्यं कालस्यानन्त्यञ्च प्रदर्शयति।

भा०:-इस वर्त्तमान अट्ठाईसवीं चौयुगी के चतुर्थ भाग में से तीसरे भाग के ६० वर्ष बीतने पर मेरा (आर्यभटका) जन्म हुआ। और मेरे जन्म काल से २३ वर्ष बीते हैं। वर्त्तमान युग के चतुर्थ पाद के ३६०० सौर वर्ष बी-तने पर मेरी २३ वर्ष की उमर हुई-इसी समय मैं ने इस ग्रन्थ को रचा। इस पर प्रकाशिकाकार ने लिखा है कि इस गीतिकोक्त भगण द्वारा त्रैराशिक से लाये हुए-ग्रहमध्य उच्च, पात, और स्फुट होते हैं। इस के उसप्रकार लाने पर सम्प्रदाय सिद्धसंस्कार करना चाहिये॥१०॥

युगवर्षमासदिवसास्समं प्रवृत्तास्तु चैत्रशुक्लादेः।
कालो ऽयमनाद्यन्तो ग्रहभैरनुमीयते क्षेत्रे॥ ११॥

एषैषां मध्यलान्तगतस्याद्युगादौ सौरचान्द्रादीनां युगपत्प्रवृत्तिः॥ अना-द्यन्तः कालः क्षेत्रे गोले स्थितैर्ग्रहैर्भैरप्यनुमीयते। एतदुक्तं भवति। यद्यप्यनाद्य-न्तः कालस्तथापि ज्योतिश्चक्रपरिभ्रमणाभिभूतः कल्पमन्वन्तरयुगवर्षमासदिवसादि-रूपेण परिच्छिद्यत इति। ग्रहाणां समगतित्वमाह।

भा०:-आकाशमण्डल में सब ही सौर, चान्द्र, आदि की एक साथ युग की आदि में प्रवृत्ति हुई। अनाद्यन्त काल, गोल में स्थितग्रहों और नक्षत्रों

ल्पक्षेत्रे मण्डले राश्यादयोऽल्पक्षेत्राः। महति मण्डले राश्यादयो महा- कक्ष्यासु विभागतुल्याः। स्वकक्ष्यायाः द्वादशांशतुल्यो राशिः। राशि- त्रिंशतुल्यक्षेत्रो भागः। तथा कलादयः। एवं स्वकक्ष्यासु प्रकल्पितविभा- राश्यादयः। नक्षत्रमण्डलादधोगतानां ग्रहकक्ष्याणां क्रममाह।

भा०:-अल्प क्षेत्र में मण्डल में राशि आदि अल्पक्षेत्र होते हैं। बड़े म- राशि आदि बड़ी होती है। अपनी कक्षा में विभाग तुल्य २ होते हैं। २ कक्षा के १२ वां अंश एक राशि के तुल्य होताहै। राशि क्षेत्र ३० अंश के । एवं अपनी २ कक्षा में प्रकल्पित विभाग तुल्य राशि आदि हैं ॥१४॥

भानामधश्शनैश्चरसुरगुरुभौमार्कशुक्रबुधचन्द्राः।
तेषामधश्च भूमिर्मेधीभूता खमध्यस्था ॥ १५ ॥

नक्षत्रकक्ष्यावस्थितानां भानामधः क्रमेण शनैश्चरादयस्स्वकक्ष्यायां चरन्ति। ग्रहाणामधस्स्थिता भूमिः खमध्यस्था। आकाशमध्ये तिष्ठति। तेषां ग्र- मेधीभूता भूमिः। मेधी नाम खलमध्ये स्थितो धान्यमर्दकानां बलीव- र्दानां बन्धनार्थं स्थापितस्स्थूलशंकुः। यथा बलीवर्दमहिषादयस्तं शंकुम् कृत्वा तस्य परितो भ्रमन्ति। तथा भानि ग्रहाश्च खमध्ये स्थितां भूमिं कृत्वा तस्याः परितो भ्रमन्ति। इत्यर्थः। अत्र निरक्षदेशमङ्गीकृत्योर्ध्वा- धभागः कृतः। ग्रहाणां मेधीभूताया भूमेः परितो भ्रमणतन्तु मेरुमध्यस- ल्प। उक्तेन कक्ष्याक्रमेणैव कालहोराधिपत्यं दिनादिपत्यञ्च प्रदर्शयति।

भा०:-नक्षत्रकक्षा अवस्थित नक्षत्रों के नीचे क्रम से शनिचर, वृहस्पति, ल, शुक्र, बुध, चन्द्रमा, अपनी २ कक्षा में चलते हैं, इन ग्रहों के नीचे य आकाश में है। इन ग्रहों के मेधीभूत भूमि है। जिस प्रकार कृषक किसान लोग) लोग धान्य आदि को दमन करने के लिये एक काष्ठ या श का बड़ा लग्गा पृथिवी में गाड़ कर उस में दश बीस या जितनी इच्छा बैलों को बांध देते हैं-और बैल सब उसी मेधी या मेढ़ा को मध्यस्थ के घूमते हैं, उसी प्रकार इस पृथिवी को मेधी मान कर उस के चारों र नक्षत्रादि और सब ग्रह भ्रमण करते हैं ॥ १५ ॥

सप्तैते होरेशाश्शनैश्चराद्या यथाक्रमं शीघ्राः।
शीघ्रक्रमाच्चतुर्था भवन्ति सूर्योदयाद्दिनपाः ॥ १६ ॥

उक्ताश्शनैश्चरादयो यथाक्रमं शीघ्राः शीघ्रगतयो भवन्ति। कक्ष्याभेदे-

चन्द्रमा का एक ही स्फुटकर्म्म होता है। और दो उच्च (शीघ्र मन्द) वाले मङ्गल आदि के दो स्फुटकर्म्म होते हैं। उसमें उन के दो स्फुटकर्म करने पर भी कभी दृग्भेद सम्भव होता है। मन्द और शीघ्र के कक्षामण्डल भेद है एवं प्रतिमण्डल के भेद से सम्भव होता है। सो दृग्भेद के परित्याग (शु दास) के लिये किया जाता है। मङ्गल, बृहस्पति, शनि, पहिले मध्य से मन्द फल लाकर उसको मध्यम करके और उच्च से शीघ्र लाकर उसका आधा वही में करके उससे मन्दफल सब केवल मध्य में करके उससे शीघ्रफल सब वही में आजाता है। वह स्फुटग्रह होता है। बुध और शुक्र का तो पहिले मध्यम से शीघ्र फल लाकर उसके आधे को मन्दोच्च में व्यस्त कर और उससे शीघ्र फल सब उसमें किया जाता है। वही स्फुट होता है॥ २१॥

ऋणधनधनक्षयास्स्युर्मन्दोच्चाद्व्यत्ययेन शीघ्रोच्चात्।

मन्दोच्चात्। मन्दोच्चहीनान्मध्यमादित्यर्थः। तस्मादुत्पन्ना जीवा प[...] क्रमेण ऋणधनधनक्षयास्स्युः। व्यत्ययेन शीघ्रोच्चात्। मध्यमहीनाच्छीघ्रोच्[...] दुत्पन्ना जीवा व्यत्ययेन धनर्णर्णधनास्स्युरित्यर्थः। एतदुक्तं भवति। प्रथम[...] मन्दभुजायाः क्रमज्याफलमृणं भवति। द्वितीयपदे कोट्या उत्क्रमज्याफल[...] तृतीयपदगतसम्पूर्णभुजाफलसंस्कृते ऋणं भवति। शीघ्रे तु धनर्णव्य[...] भवति। इति। मान्द्ये मेषादौ भुजाफलमृणं तुलादौ धनम्। शैघ्र्ये तूच्चा[...] मस्य शोधन विधानान्मेषादौ धनं तुलादावृणमित्येवार्थः।

भा०:—मध्यमहीन उत्पन्न जीवा पद क्रम से ऋण और धन मन्[...] धन और ऋण होता है। मध्यम हीन शीघ्रोच्च से उत्पन्न जीवा विपरी[...] से धन और ऋण, ऋण और धन होता है। इस का आशय यह है [...] पद में मन्दभुजा की क्रमज्याफल ऋण होता है। द्वितीय पद में को[...] उत्क्रमज्या फल होता है। तृतीय पदगत सम्पूर्ण भुजफलसंस्कृत में ऋ[...] है। शीघ्र में तो धन ऋण विपरीत भाव से होता है। मान्द्यकर्म में [...] में भुजाफल ऋण, तुलादि में धन होता है। शैघ्र्य में तो उच्च से [...] शोधन विधान मेषादि में धन होता है, तुलादि में ऋण होता है।

शनिगुरुकुजेषु मन्दादर्धमृणधनं भवति पूर्वे॥

मन्दोच्चाच्छीघ्रोच्चादर्धमृणधनं ग्रहेषु मन्देषु।

मन्दोच्चात्स्फुटमध्याश्शीघ्रोच्चाच्च स्फुटा ज्ञेयाः

शनिगुरुकुजेषु मन्दोच्चात् सिद्धान्मन्दान्मन्दभुजाफलादर्धं मेषादावृणं तुलादौ
[भवति । पूर्वं स्फुटकर्मैवमेवमित्यर्थः । मन्दोच्चहीनान्मध्यमात्सिद्धान्मन्द
दर्धं मध्यम ऋणं धनं वा यथाविधि कार्यमित्युक्तं भवति ॥ शीघ्रोच्चादर्धे-
नं ग्रहेषु मन्देषु। शीघ्रोच्चान्मन्दफलार्धसंस्कृतमध्यहीनादुत्पन्नशीघ्रभुजा-
दर्धमृणं धनं वा यथाविधि मन्देषु ग्रहेषु मन्दफलार्धसंस्कृतेषु शनिगुरुकुजा-
मध्यमेषु कुर्यात् । मन्दोच्चात्स्फुटमध्याः । मन्दोच्चात् मन्दोच्चसिद्धमन्दफ-
स्कारादित्यर्थ । मन्दफलार्धशीघ्रफलार्धाभ्यां संस्कृतान्मध्यमान्मन्दोच्चं वि
य तस्मादुत्पन्नेन मन्दफलेन कृत्स्नेन संस्कृतः केवलमध्यः स्फुटमध्यमाख्यो
ति । एवं शनिगुरुकुजानां स्फुटमध्या भवन्ति। शीघ्रोच्चाच्च स्फुटा ज्ञेयाः
शीघ्रोच्चात्स्फुटमध्यमहीनादुत्पन्नेन शीघ्रफलेन कृत्स्नेन संस्कृतस्स्फुटमध्यस्स्फु
ग्रहो भवति । एवं शनिगुरुकुजानां स्फुटा ज्ञेयाः ॥

भा०:-शनि, गुरु, मङ्गल में मन्दोच्च से सिद्ध मन्द से मन्दभुजाफला
ादि में ऋण और तुलादि में धन होता है । पूर्व ही स्फुटकर्म में मध्य
मन्दफल से आधा मध्यम ऋण या धन यथाविधि करना चाहिये । आश
है कि शीघ्रोच्च से अर्द्ध ऋण, धन ग्रहों में मन्द में शीघ्रोच्च से मन्द फला
कृत मध्य हीन से उत्पन्न शीघ्र भुजाफल अर्द्ध ऋण या धन यथाविधि म
ों में मन्दफलार्द्ध संस्कृत में शनि, गुरु, मङ्गल के मध्य करना चाहिये ।
ाच्च सिद्ध मन्दफल संस्कारादि । मन्दफलार्द्ध शीघ्रफलार्द्ध द्वारा संस्कृत मध्य
न्दोच्च को घटा कर उस से उत्पन्न कृत्स्न मन्दफल द्वारा संस्कृत केवल म
फुट मध्य नामक होता है । एवं शनि, गुरु, मङ्गल, का स्फुट मध्य होता है
ीघ्रोच्च से स्फुट मध्य घटाकर, जो उत्पन्न सम्पूर्ण शीघ्रफल, उसके द्वारा संस्
फुट ग्रह होता है ॥ २२ । २३ ॥

शीघ्रोच्चादर्धोनं कर्तव्यमृणंधनंस्वमन्दोच्चे ।
स्फुटमध्यौ तु भृगुबुधौ सिद्धान्मन्दात्स्फुटौ भवतः ॥२४

भृगुबुधयोस्तु शीघ्रोच्चान्मध्यमहीनादुत्पन्नं शीघ्रफलमर्धोनं स्वमन्दो
मेषादावृणं तुलादौ धनञ्च कार्यम् । शीघ्रविधिरनल्पैर्धनैरित्यर्थः । स्फुटमध्यौ
भृगुबुधौ सिद्धान्मन्दात् । एवंसिद्धान्मन्दान्मन्दोच्चादुत्पन्नमन्दफलं तेन कृ
संस्कृतौ भृगुबुधमध्यमौ स्फुटमध्याख्यौ भवतः । शीघ्रफलार्धसंस्कृतं मन्दोच्च
मध्यमाद्विशोध्य तस्मादुत्पन्नमन्दफलेन कृत्स्नेन संस्कृतौ मध्यस्फुटौ भवतः ।

लानयनप्रकारस्तु । मन्दकेन्द्रभुजाज्यां मन्दस्फुटवृत्तेन निहत्याशीत्या विभज्य लब्धस्य चापं मन्दफलं भवति। तथा शीघ्रकेन्द्रभुजज्यां शीघ्रस्फुटवृत्तेन निहत्याशीत्या विभज्य लब्धं व्यासार्धेन निहत्य शीघ्रकर्णेन विभज्य लब्धस्य चापं शीघ्रफलं भवति। कर्णस्तु तत्तत्केन्द्रादुत्पन्नभुजज्यां कोटिज्यांच स्ववृत्तेन निहत्याशीत्या विभजेत्। तत्र लब्धे भुजाकोटिफले भवतः। कोटिफलं मृगादौ व्यासार्धे निक्षिप्य कर्क्यादौ कोटिफलं व्यासार्धाद्विशोध्य वर्गीकृत्य तस्मिन् भुजाफलवर्गं प्रक्षिप्य मूलीकुर्यात्। सकर्णो भवति। एवं सकृत्कृत एव शीघ्रकर्णस्स्फुटस्स्यात्। मन्दकर्णस्तु विशेषितस्स्फुटो भवति। तत्प्रकारस्तु। प्रथमसिद्धं कर्णं भुजाकोटि फलाभ्यां निहत्य व्यासार्धेन विभजेत् तत्र लब्धे भुजाकोटिफले कर्णसिद्धे भवतः। पुनस्ताभ्यां व्यासार्धेन पूर्ववत् कर्णमानयेत्। तमपि कर्णं प्रथममशीत्या लब्धाभ्यां भुजाकोटिफलाभ्यामेव निहत्य व्यासार्धेन विभज्य भुजाफलं कोटिफलस्थानीय ताभ्यां कर्णं साधयेत्। एवं तावत्कुर्यात् यावदविशेषकर्णलब्धिः। अविशिष्टो मन्दकर्णस्स्फुटो भवति। वृत्तकर्म तु। भुजाज्यामोजयुग्मपदवृत्तान्तरेण निहत्य व्यासार्धेन विभज्य लब्धमोजपदवृत्ते धनमृणं कुर्यात्। ओजवृत्तेऽन्यस्मान्न्यूने धनम्। अधिके ऋणम्। तत् स्फुटवृत्तं भवति। एतत्सर्वं कक्ष्याप्रतिमण्डलगा इत्यादिभिः प्रदर्शितमेवेति भावः॥

"स्फुटविधियुक्तिरिसध्येवैव विना छेद्यकेन विहगानाम्।
तस्मादिह संक्षेपाच्छेद्यककर्म प्रदर्श्यते तेषाम्॥
त्रिज्याकृतं क्षुमध्यं कक्ष्यावृत्तं भवेत्तु तच्छैघ्रम्।
शीघ्रदिशि तस्य केन्द्रं शीघ्रान्त्यफलान्तरे पुनः केन्द्रम्॥
कृत्वा विलिखेद्वृत्तं शीघ्रप्रतिमण्डलाख्यमुदितमिदम्।
इदमेव भवेन्मान्दे कक्ष्यावृत्तं पुनस्तु तत्केन्द्रात्॥
केन्द्रं कृत्वा मन्दान्त्यफलान्तरे वृत्तमपि च मन्ददिशि।
कुर्यात्प्रतिमण्डलमिदमुदितं मान्दं शनीज्यभूपुत्राः।
मान्दप्रतिमण्डलगास्तत्कक्ष्यायां तु यत्र लक्ष्यन्ते।
तत्र हि तेषां मन्दस्फुटाः प्रदिष्टास्तथैव शैघ्रे ते।
प्रतिमण्डले स्थितास्स्फुरन्ते लक्ष्यन्ते पुनस्तु शैघ्राख्ये।
कक्ष्यावृत्ते यस्मिन् भागे तत्र स्फुटग्रहास्ते स्युः॥
पूर्वं निष्पति तत्र स्फुट युग्मं तत्र भवति दृग्भेदः।
यत्र खगा लक्ष्यन्ते तत्रस्था भविता यतोऽन्यस्मिन्॥"

क्रियतेऽत्र तन्निमित्तं मध्ये मान्दार्धमपि च शैघ्रार्धम् ।
शैघ्रं मान्दं मान्दं शैघ्रञ्चेति क्रमस्स्मृतोऽन्यत्र ॥
मान्दं कक्ष्यावृत्तं प्रथमं बुधशुक्रयोः कुमध्यं स्यात् ।
तत्केन्द्रान्मन्ददिशि मन्दान्त्यफलान्तरे तु मध्यं स्यात् ॥
मान्दप्रतिमण्डलस्य तस्मिन्यत्र स्थितो रविस्तत्र ।
प्रतिमण्डलस्य मध्यं शैघ्रस्य तस्य मानमपि च गदितम् ॥
शैघ्रस्ववृत्ततुल्यं तस्मिंश्चरतस्सदा ज्ञशुक्रौ च ।
स्फुटयुक्तिः प्राग्वत्स्याद्दृग्भेदः पूर्ववद्भवेदिह च ॥
क्रियतेऽत्र तन्निमित्तं शैघ्रार्धं व्यत्ययेन मन्दोच्चे ।
तत्सिद्धं मान्दं प्राक् पश्चाच्छैघ्रञ्च सूरिभिः पूर्वैः ॥

ति ॥ भूताराग्रहविवरानयनायाह ।

भा०:—शुक्र और बुध का तो मध्यम हीन शुक्रोच्च से उत्पन्न शीघ्रफल द्धीन को स्वमन्दोच्च मेषादि में ऋण और तुलादि में धन करना चाहिये र्थात् शीघ्रोच्च के नियम के उलटा इस प्रकार सिद्ध मन्दोच्च से जो मन्दफल न सब के साथ संस्कृतशुक्र और बुध (मध्यम) स्फुट मध्य होते हैं। ीघ्र फलार्द्ध संस्कृत मन्दोच्च को मध्यम घटाकर उससे उत्पन्न मन्दफल सब े साथ संस्कृतमध्य स्फुट होता है। फलानयन प्रकार तो मन्दकेन्द्र भुजा ी ज्या को मन्दस्फुट वृत्त के साथ गुणनकर ८० से भाग देवे, भागफल चापीय ान्दफल होगा। उसी प्रकार शीघ्रकेन्द्र भुजज्या को शीघ्रस्फुट वृत्त के साथ ुणनकर, गुणनफल में ८० का भाग देवे, भागफल शीघ्रफल होगा। कर्ण तो ग्र २ केन्द्र से उत्पन्न भुजज्या को एवं कोटीज्या को स्ववृत्त से गुणनकर ८० ा भाग देवे भागलब्ध भुजफल और कोटीफल होंगे। कोटीफल को मिंह राशि) आदि में व्यासार्द्ध में मिलाकर, कर्क (राशि) आदि में कोटीफल ो व्यासार्द्ध से घटाकर, वर्गकर उसमें भुजावर्गफल को मिलाकर मूल करे तो र्ण होगा। एवं एक बार करने ही से शीघ्रकर्ण स्फुट होता है। मन्दकर्ण ो विशेषित स्फुट होता है। उस प्रकार प्रथम सिद्धकर्ण को भुजा कोटी द्वारा गुणन कर व्यासार्द्ध में भाग देवे, भागफल भुजाफल, कोटीफल कर्ण सिद्ध होते हैं। पुनः उन दोनों से व्यासार्द्ध से पूर्ववत् कर्ण लावे। उस कर्ण को भी ८० द्वारा भाग देने पर लब्धि भुजाफल और कोटीफल ९ से गुणन कर व्यासार्द्ध से भाग देकर भुजाफल और कोटीफल को लाकर इनसे कर्ण ला-

धन करे। यह क्रिया उस समय तक करे जब तक अविशेष कर्ण
अवशिष्ट मन्दकर्ण स्फुट होगा। वृत्तकर्म तो भुजज्या को ओ
युग्मपद के वृत्त के अन्तर से गुणन कर व्यासार्द्ध से भाग देवे, भागफ
पद वृत्त में धन को ऋण करे। ओजपद वृत्त में धन को ऋण क
ओजवृत्त में अन्य से न्यून द्वारा धन और अधिक में ऋण। वह
होता है ॥ २४ ॥

भूताराग्रहविवरं व्यासार्धहृतस्स्वकर्णसंवर्गः ।
कक्ष्यायां ग्रहवेगो यो भवति स मन्दनीचोच्चे ॥२

अन्त्योपान्त्यस्फुटकर्मसिद्धयोश्शीघ्रकर्णमन्दकर्णयोस्संवर्गो व्यास
भूताराग्रहविवरं भवति। भूमेस्ताराग्रहणाञ्चान्तरालं कलात्मकमित्युक्तं भ
ताराग्रहाणां विक्षेपानयने भूताराग्रहविवरं भागहारो भवति। तत्र स्वप
भुजज्यां स्वपरमविक्षिप्त्या निहत्य स्वेन भूताराग्रहविवरेण विभजेत्।
ब्धं स्वविक्षेपो भवति। तत्रास्य विनियोगः कक्ष्यायामिति। अत्र प्रकारा
कारः। भूताराग्रहविवरव्यासार्धविरचितायां कक्ष्यायां यो ग्रहस जवस्तम
नीचोच्चे भवति। तावत्प्रमाणायां कक्ष्यायां ग्रहो मन्दस्फुटगत्या गच्छती
ः। इत्याह। अस्मान् किन्त्वेतन्नोपपन्नमिति प्रतिभाति। अथवा योजना
वृत्ते स्फुटग्रहस्य मध्यादधि भवति। एवं शीघ्रेऽपीति। अथवा कक्ष्यायां
ो ग्रहस्य प्रतिमण्डलतो वहिरन्तर्वा यावती परमा गतिस्तावत्प्रमाण
मन्दनीचोच्चवृत्तं भवति। एवं शीघ्रेऽपीति ॥

ा०:—तारा और ग्रहों के विक्षेप लाने में भूतारा ग्रह विवर भाग ह
है। उसमें अपने पात से ऊन भुजज्या को स्वपरम विक्षिप्ति से अन्त
र अपने भूतारा ग्रह से भाग देवे भागफल स्वविक्षेप होता है। कक्षा
फुट ग्रह का मध्य से होता है। एवं शीघ्र में भी अथवा कक्षा में
का प्रति मण्डल से बाहर या भीतर जितनी परमागति होती है
रिमाण व्यासार्द्ध मन्दनीचोच्च वृत्त होता है। इसी प्रकार शीघ्र में
॥ २५ ॥

ेश्वरिकायां भटदीपिकायां कालक्रियापादस्तृतीय

———○:✱:○:✱:○———

अथ गोलपाद आरभ्यते । तत्रापमण्डलसंस्थानमाह ।

मेषादेः कन्यान्तं सममुदगपमण्डलार्धमपयातम् ।
तौल्यादेर्मीनान्तं शेषार्धं दक्षिणेनैव ॥१॥

मेषादिकन्यान्तै राशिभिरुपलक्षितमपमण्डलस्यार्धमुदगपयातम् । तौल्यादिमीनान्तै राशिभिरुपलक्षितं शेषार्धं दक्षिणेनापयातम् । सममपयातम् । एतदुक्तं भवति । मेषादेः क्रमेण कन्यादेरुत्क्रमेण च सममपयाति । मेषसमं कन्याया अपयानम् । वृषसमं सिंहस्य । इत्यादि । अपयानं हि मण्डलस्य क्रमेण भवति । तथा तुलासमं मीनस्यापयानम् । वृश्चिकसमं कुम्भस्य । इत्यादि । मेषादेः कन्यान्ताच्च त्रिराश्यन्तरे परमापयानं भवति । चतुर्विंशतिभागाः परमापयानम् । भापक्रमो ग्रहांशा इति गीतिकासूक्तं तत् (श्लो० ३ ।) अत्र मेषादिकन्यान्तशब्दौ पूर्वस्वस्तिकापरस्वस्तिकयोर्गतराशिभागयोर्बोधकौ । अतो यदा धनात्मका अयनसंस्कारभागाः पञ्चदश भवन्ति तदा मीनमध्यं पूर्वस्वस्तिकगतं कन्यामध्यमपरस्वस्तिकगतम् । तदा मीनमध्यात् कन्यामध्यान्तमर्धमुदगपयातं शेषमर्धं दक्षिणतोऽपयातम् । यदा ऋणात्मकाः पञ्चदशभागा अयनाख्यास्स्युस्तदा मेषमध्यं पूर्वस्वस्तिकगतं तुलामध्यमपरस्वस्तिकगतम् । तदा मेषमध्यात्तुलामध्यान्तमर्धमुदगपयातं शेषमर्धं दक्षिणतोऽपयातम् । इति वेद्यम् । अतएव मेषादितः ...तेष्वपक्रमानयनायनसंस्कारः क्रियते ॥ अथापक्रममण्डलचारिण आह ।

भा०;—मेष राशि से कन्या तक अर्थात् मेष, वृष, मिथुन, कर्कट, सिंह, ...या, अपमण्डल का आधा भाग उत्तर की ओर चलता है । और तुला से ...न राशि तक अर्थात् तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन तक अपमण्डल ...क्षिण की ओर चलता है । सम अपयान का अर्थ यह है कि मेष राशि के ...ल्य कन्या का अपयान, (चलना) वृष के तुल्य सिंह का, मिथुन के तुल्य । ...ष राशि से कन्या राशि पर्य्यन्त तीन २ राशि अन्तर पर परमापयान होता ...। चौबीस २४ भाग परमापयान होता है । यहां मेष, वृष, मिथुन, कर्कट, ...सिंह, कन्या, इन छः राशियों को अर्थात् राशि चक्र के आधे भाग को "पूर्वस्वस्तिक" कहते हैं । और तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन, इन छः राशियों को अर्थात् राशिचक्र के अपरार्द्ध को "अपरस्वस्तिक" कहते हैं । इस ...लिये जब धनात्मक अयन संस्कार १५ भाग होता है तो मीन मध्य 'पूर्वस्वस्तिक' गत और कन्या मध्य अपरस्वस्तिगत होता है । तब मीन मध्य से कन्या मध्यान्तर्गत आधा मण्डल उत्तर को चलता है और शेषार्द्ध दक्षिण को चलता है । जब ऋणात्मक १५ भाग अयन नाम होता है । तब मेष मध्य पूर्व

स्वस्तिकगत एवं तुल्य मध्य अपरस्वस्तिकगत होता है। तब मेष के मध्य से तुला मध्यान्त–आधा उत्तर अपयान होता है और शेषार्द्ध दक्षिण से अपयान होता है। इसलिये मेष की आदि से अपक्रम लाने का संस्कार होता है॥ १ ॥

तारग्रहेन्दुपाता भ्रमन्त्यजस्रमपमण्डलेऽर्कश्च ।
अर्काच्च मण्डलार्धे भ्रमति हि तस्मिन् क्षितिच्छाया ॥ २॥

ताराग्रहाणां पाताश्चेन्दुपातश्चार्कश्च सदाऽपमण्डले भ्रमन्ति। अर्कान्मण्डलार्धे ऽपमण्डले भूच्छाया सदा भ्रमति। शशिकुजादयश्च स्वे–स्वे विक्षेपमण्डले चरन्ति॥ विक्षेपमण्डलस्य संस्थानमाह।

भा०:—तारा, ग्रह, चन्द्रमा, इनके पात और सूर्य्य सदा अपमण्डल में भ्रमण करते हैं। सूर्य्य से मण्डल के आधे अपमण्डल में भूच्छाया सदा भ्रमण करती है। चन्द्रमा, मङ्गल आदि अपने २ विक्षेपमण्डल में चलते हैं॥ २॥

अपमण्डलस्य चन्द्रः पाताद्यात्युत्तरेण दक्षिणतः ।
गुरुकुजकोणाश्चैवं शीघ्रोच्चेनापि बुधशुक्रौ ॥ ३ ॥

स्फुटचन्द्रो यदापमण्डलस्यपातसमो भवति तदा चन्द्रोऽपमण्डले चरति। ततः क्रमेणोत्तरेण याति। पातात्त्रिराश्यन्तरे परमविक्षेपसमुदग्गमनम्। पातात् षड्राश्यन्तरे स्थितश्चन्द्रोऽपमण्डले चरति। तत्र हि द्वितीयपातस्य स्थितिरुक्ता। तस्माद्द्वितीयपातात् क्रमेण दक्षिणतो याति। तत्रापि पातात्त्रिराश्यन्तरे परमविक्षेपसमं दक्षिणायनम्। एवं चन्द्राधारस्य विक्षेपमण्डलस्य संस्थानमुदितम्। परमविक्षेपस्तु कार्धमित्युक्तं(दशगीतिकायाम् ८।) सार्धचत्वारोंऽशा इत्यर्थः॥ गुरुकुजकोणाश्चैवम्। यथा मन्दस्फुटसिद्धश्चन्द्रस्स्वपातसमोऽपमण्डले चरति तथा गुरुकुजकोणाश्च स्वमन्दस्फुटे पातसमेऽपमण्डले चरन्ति। ततः क्रमेणोत्तरेण यान्ति। पातात्त्रिराश्यन्तरे मन्दस्फुटे परमविक्षेपसमुदग्गमनम्। पातात् षड्राश्यन्तरे मन्दस्फुटेऽपमण्डले चरन्ति। ततः क्रमेण दक्षिणतो यान्ति। तत्रापि त्रिराश्यन्तरे परमविक्षेपसमं दक्षिणगमनम्। एवं गुरुकुजमन्दानामाधारभूतस्य विक्षेपमण्डलस्य संस्थानम्। शीघ्रोच्चेनापि बुधशुक्रौ। स्वशीघ्रोच्चेनाप्यपमण्डलादुदग्दक्षिणतश्च चरतो बुधशुक्रौ। अपिशब्दान्मन्दस्फुटवशाच्च। एतदुक्तं भवति। बुधशुक्रयोस्स्वमन्दफलं स्वशीघ्रोच्चे व्यस्तं कृत्वा तस्मात्स्वपातं वियोज्य विक्षेपस्साध्य इति। अतो मन्दफलसंस्कृते शीघ्रोच्चे स्वपातसमेऽपमण्डले चरतः। ततः क्रमेणोदग्यातः। पातात्त्रिराश्यन्तरे शीघ्रोच्चे परमविक्षेप-

समुद्गमनं षड्राश्यन्तरेऽपमण्डले चरतः। तस्मात् क्रमेण दक्षिणतश्चरतः। तत्रापि त्रिराश्यन्तरे परमविक्षेपसमं दक्षिणगमनम्। इति। एवं सर्वेषां विक्षेपमण्डलमपमण्डले स्वपातद्वयभागयोर्युताभ्यां त्रिराश्यन्तरे उदग्दक्षिणतश्चापमण्डलात्परमविक्षेपान्तमितं भवति। परमविक्षेपस्तु शनिगुरुकुज एकगार्धं भृगुबुध अ इत्युक्तम्। (दशगीतिकायाम् ६।) केचिदाचार्या गुरुकुजशनीनां शीघ्रोच्चफलं स्वपातेऽपि ग्रहवत् कृत्वा तथाकृतं स्वपातं स्फुटग्रहाद्विशोध्य विक्षेपानयनं कुर्वन्ति बुधशुक्रयोस्तु स्वमन्दफलं स्वपाते कृत्वा तं पातं शीघ्रोच्चाद्विशोध्य विक्षेपं कुर्वन्ति। तथाच लल्लाचार्यः।

"क्षितिसुतगुरुसूर्यसूनुपाताः स्वचलफलेन युता यथा तथैव।
शशिसुत . स्फुटाः स्युः॥"

इति। . . . । इन्द्वादीनामर्कविप्रकर्षसन्निकर्षकृतोदयास्तमयस्य परिज्ञानमाह।

भा०:—स्फुट चन्द्रमा जब अपमण्डलस्थ पात सम होता है। तब क्रम से ...ार ओर होकर जाता है। पात से तीन राशि के अन्तर पर परमविक्षेप ...-उत्तर गमन करता है। पात से ६ राशि के अन्तर पर स्थित चन्द्रमा अ...ण्डल में चलता है। उसी स्थान में दूसरे पात का सम्भव होता है। इस ...से उसकी स्थिति कही गयी। उस दूसरे पात से क्रमशः दक्षिण करके जाता ...। वहां भी पात से तीन राशि के अन्तर पर परमविक्षेप सम दक्षिणायन ...ता है। एवं चन्द्राधार विक्षेपमण्डल का संस्थान कहा है। और परम ...क्षेप ४ अंश ३० कला है (पा० ३। गी० ८) जिन राशियों का सम अप...न होता उनको निम्न लिखित चक्र द्वारा दिखलाया जाता है:——

समअपयानचक्र॥

...न दो राशियों में सम अपयान होता।		जिन दो राशियों में सम अपयान होता।	
राशि के	तुल्य	राशि के	तुल्य
मेष	कन्या	तुला	मीन
वृष	सिंह	वृश्चिक	कुम्भ
मिथुन	कर्कट	धनु	मकर
कर्कट	मिथुन	मकर	धनु
सिंह	वृष	कुम्भ	वृश्चिक
कन्या	मेष	मीन	तुला

यह चक्र इसी पाद के दूसरी गी० के आशय से बना है।

भा०ः—जिस प्रकार मन्दस्फुट चन्द्रमा स्वपात सम अपमण्डल में चलता है उसी प्रकार गुरु, कुज, और कोण स्वमन्दस्फुट पात सम अपमण्डल में चलते हैं। तब क्रमशः उत्तर होकर जाता है। पात से तीन राशि के अन्तर पर मन्दस्फुट में परमविक्षेपसम उत्तर गमन करता है। पात से ६ राशि के अन्तर पर मन्दस्फुट अपमण्डल में चलते हैं। तब क्रम से दक्षिण से जाते हैं। वहां भी तीन राशि के अन्तर पर परम विक्षेप सम दक्षिण को जाता है। एवं गुरु, कुज, मन्द के आविर्भूत विक्षेपमण्डल का संस्थान है बुध और शुक्र के स्वमन्दफल को अपने शीघ्रोच्च में व्यस्त (उल्टा) करके उससे अपने पात को घटाकर विक्षेप साधे। इसलिये मन्दफल संस्कृत शीघ्रोच्च स्वपात सम अपमण्डल में चलते हैं; तब क्रम से उत्तर जाते हुए पात से तीन राशि के अन्तर पर शीघ्रोच्च में परम विक्षेपसम उत्तर गमन छः राशि अन्तर पर अपमण्डल में चलने से। तब क्रम से दक्षिण जाते हुए वहां भी राशि के अन्तर पर परमविक्षेप सम दक्षिण गमन करता है। इसीप्रकार सब का विक्षेपमण्डल अपमण्डल में स्वपात के दोनों भाग में बन्धा उन दोनों से तीन राशि के अन्तर पर उत्तर दक्षिण करके अपमण्डल से परम विक्षेपान्तमित होता है ॥ ३ ॥

चन्द्रोंऽशैर्द्वादशभिरविक्षिप्तोऽर्कान्तरस्थितैर्दृश्यः।

नवभिर्भृगुर्भृगोस्तैर्द्व्यधिकैर्द्व्यधिकैर्यथाश्लक्ष्णाः ॥४॥

अविक्षिप्तो मृगाङ्कस्त्वार्कान्तरस्थितैर्द्वादशभिरंशैर्दृश्यः। (नवभिर्भृगुः। नवभिः कालांशैर्भृगुर्दृश्यः)। नवभिर्विनाडिकाभिरित्यर्थः। भृगोरुक्तैस्तैर्द्व्यधिकैर्गुरुर्दृश्यः। एकादशभिः कालभागैरित्यर्थः। तैर्द्व्यधिकैर्बुधो दृश्यः। त्रयोदशभिः कालभागैरित्यर्थः। तैर्द्व्यधिकैश्शनिर्दृश्यः। पञ्चदशभिः कालभागैरित्यर्थः। तैर्द्व्यधिकैः कुजोदृश्यः सप्तदशभिः कालभागैरित्यर्थः। यथाश्लक्ष्णाः। यथासूक्ष्मा इत्यर्थः। शुक्राद्गुरुस्सूक्ष्मः। ततो बुधः। ततो मन्दः। ततः कुजः। भृगुगुरुबुधशनिभौमाश्शशिङञणनमांशका इति (दशगीतिकायाम् ५।) इत्युक्तत्वोक्तः। विक्षिप्ते ग्रहे तु दर्शनसंस्कारयुतग्रहसूर्ययोरन्तरालगतैरंशैर्यथोक्तसंख्यैर्दृश्यो भवति। स्वतोऽप्रकाशस्य भूम्यादेः प्रकाशहेतुमाह।

भा०ः—सूर्य से १२ अंश दूर पर चन्द्रमा दृश्य होता है, ९ भी कालांश अर्थात् विनाडिका से शुक्र दृश्य होता है, गुरु ११ कालांश, बुध १३ कालांश

शनि १५ कालांश, मङ्गल १७ कालांश पर दृश्य होते हैं। जो २ ग्रह जैसे २ सूक्ष्म होते हैं। वह २ ग्रह वैसे २ अधिक कालांश पर दीख पड़ते हैं। शुक्र से गुरु सूक्ष्म, पुनः बुध, तब शनैश्चर, फिर मङ्गल है ॥ ४ ॥

भूग्रहभानां गोलार्धानि स्वच्छायया विवर्णानि।
अर्धानि यथासारं सूर्याभिमुखानि दीप्यन्ते ॥५॥

भूमेश्चन्द्रादीनां ग्रहाणां भानामश्विन्यादितारकाणामितरतारकाणाञ्च गोलार्धानि सर्वतोवृत्तानां स्वशरीराणामर्धानि स्वच्छायया विवर्णानि स्वभावसिद्धेन रूपेण विवर्णानि। अप्रकाशात्मकानि। अथवा स्वच्छायया स्वशरीरेणार्कस्यव्यवधानादुत्पन्ना या छाया तमोरूपा तया विवर्णानीति। सूर्याभिमुखान्यन्यान्यर्धानि यथासारं दीप्यन्ते। अल्पशरीरा अल्परूपा दीप्यन्ते महाशरीरा महारूपा दीप्यन्ते। इत्यर्थः। चन्द्रस्य चार्धं सदा प्रकाशवद्भवति। अमावास्यायां चन्द्रस्योर्ध्वार्धं प्रकाशवद्भवति। तस्मादस्माभिस्तदर्धमदृश्यं भवति। प्रतिपदादिषु क्रमेण सितभागोऽधो लम्बते। पूर्णायामधोऽर्धं सर्वं सितं भवति। तस्मादस्माभिर्दृश्यमर्धं सितं भवति। बुधशुक्रावर्कादधःस्थावपि तयोस्सूर्यासत्त्या सूर्यबिम्बस्य महत्त्वाच्च सदा सितमेव तयोर्बिम्बं भवति। कायासंस्थानं भूसंस्थानञ्चाह।

भा०:-पृथिवी, चन्द्रमा, एवं अन्यान्य ग्रह, अश्विनी आदि तारागण के गोलार्द्ध अर्थात् आधा भाग-अपने शरीर का आधा भाग अपनी छाया से (सूर्य के प्रकाश के कारण) अप्रकाशात्मक होता है। और शेषार्द्ध इनके सूर्य के सम्मुख होने से प्रकाशित होते हैं। अल्प शरीर वाले अल्प रूप से, बड़े शरीर वाले बड़े रूप से प्रकाशित होते हैं। चन्द्रमा का आधा भाग सदा प्रकाशवान् होता है ॥ ५ ॥

वृत्तभपञ्जरमध्ये कक्ष्यापरिवेष्टितः खमध्यगतः।
मृज्जलशिखिवायुमयो भूगोलस्सर्वतोवृत्तः ॥६॥

भपञ्जरो नक्षत्रकक्ष्या। वृत्ताकारनक्षत्रकक्ष्याया मध्ये भूर्भवति। कक्ष्यापरिवेष्टितः। चन्द्रार्कादिग्रहाणां कक्ष्यामध्यगत इत्यर्थः। खमध्यगतः। ब्रह्माण्डकटाहावच्छिन्नस्याकाशस्य मध्यगतः। मृज्जलशिखिवाय्वात्मकः सर्वतोवृत्तश्च भूगोलो भूमिर्भवति। भानामध इत्यादिभिरुक्तं भूसंस्थानस्य पुनर्वचनं प्राणिसंचारमदर्शयितया एवंभूतायां भुवि सर्वत्र प्राणिनां संचारोऽस्तीति दर्शनार्थं तत्प्राणिसंचारं प्रदर्शयति ॥

भा०:–वृत्ताकार नक्षत्र कक्षा में पृथिवी है, चन्द्रमा, सूर्य्य आदि ग्रहक से परिवेष्टित आकाश के बीच जिस प्रकार दो कटाह के . सम्पुट की न अवस्थित है। मृत्तिका, जल, वायु, अग्निमय सब ओर से घिरा हुआ भूगो अवस्थित है ॥ ६ ॥

यद्वत् कदम्बपुष्पग्रन्थिः प्रचितस्समन्ततः कुसुमैः।
तद्वद्धि सर्वसत्त्वैर्जलजैस्स्थजैश्च भूगोलः ॥७॥

यथा कदम्बाख्यवृक्षस्य कुसुमग्रन्थिस्समन्ततः सर्वत ऊर्ध्वभागे पार्श्वेषु कुसुमैः प्रचितः। तथा वृत्ताकारो भूगोलश्च जलजैस्सर्वसत्त्वैः स्थलजैस्सर्वसत्त्वैः सर्वतः प्रचितः। भूगो सर्वत्र स्थावरजङ्गमा नदीतटाकादयश्च भवन्तीत्यर्थः कल्पेन संभूतं भूमेर्वृद्धयुपचयमाह।

भा०:–यह भूगोल कदम्ब के फूल के केशर के फैलावसा सब ओर पर्वत आराम, ग्राम, नदी आदि से घिरा हुआ है ॥ ७ ॥

ब्रम्हदिवसेन भूमेरुपरिष्टाद्योजनं भवति वृद्धिः।
दिनतुल्ययैव रात्र्या मृदुपचितायास्तदिह हानिः ॥८॥

ब्रह्मदिवसेन भूमेरुपरिष्टाद्योजनं वृद्धिर्भवति। समन्ताद्योजनं वृद्धिर्भवतीत्यर्थः। दिन तुल्यया रात्र्या ब्रह्मणो रात्र्या मृदोपचितायाः भूमेस्तद्धानिर्भवति। योजनं हानिर्भवतीत्यर्थः। अतः कल्पादौ पञ्चाशदधिकं योजनसहस्रं भूमेर्विष्कम्भः। अन्तरालेऽनुपातेन कल्प्यः। इत्युक्तं भवति। भूमेः प्रागगमनं नक्षत्राणां गत्यभावमिच्छन्ति केचित् तन्मिथ्याज्ञानवशादित्याह।

भा०:–एक ब्राह्म दिन में सब ओर से पृथिवी की एक योजन वृद्धि होती है, एवं ब्राह्मरात्रि में पृथिवी की एक योजन हानि होती है। इसलिये कल्प की आदि में पृथिवी का १०५० योजन व्यास होता है ॥ ८ ॥

अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लङ्कायाम् ॥९॥

यथा नौस्थो गमनं कुर्वन् पुरुषोऽनुलोमगतिस्स्वाभिमतां पश्चिमां दिशं गच्छन्नचलं नद्या उभयपार्श्वगतमचलं वृक्षपर्वतादिवस्तु विलोमगं प्राचीं दिशं गच्छदिव पश्यति तथा भानि नक्षत्राणि लङ्कायां समपश्चिमगानि कर्म्भूतानि चलमानि भूमिगतान्यचलवस्तूनि दर्शनानि विलोमगानीव प्राचीं दिशं गच्छन्तीव पश्यति। लङ्कादि विषुवद्देशे स्थित नक्षत्रपञ्जरस्य समपश्चिमगत्वम्।

मिथ्याज्ञानवशादुत्पन्नां प्रत्यग्गमनप्रतीतिमङ्गीकृत्य भूमेः प्राग्ग- परमार्थतस्तु स्थिरैव भूमिरित्यर्थः। भपञ्जरस्य भ्रमणहेतुमाह।
। नौका में बैठा हुआ मनुष्य किनारे की स्थिर वस्तुओं को दू- चलते हुए देखता है, ऐसे ही मनुष्यों को सूर्य्यादि नक्षत्र जो न की ओर चलते हुए दीखते हैं और पृथिवी स्थिर मालूम तु वास्तव में भूमि ही चलती है॥ ९॥

स्तमयनिमित्तं नित्यं प्रवहेण वायुनाक्षिप्तः।
समपश्चिमगो भपञ्जरस्सग्रहो भ्रमति ॥१०॥

ामुदयास्तमयहेतुभूतो भपञ्जरो नक्षत्रगोलो राशिचक्रात्मकः प्रव- ना सदा आक्षिप्तो लङ्कायां समपश्चिमगो ग्रहैस्सह भ्रमति। मेरु- रूपञ्चाह।
र्य्यादि के उदय और अस्त के हेतु भूत भपञ्जर अर्थात् नक्षत्रगोल वायु द्वारा सदा आक्षिप्त लङ्का में सम पश्चिम ग्रहों के साथ १० ॥

ोजनमात्रः प्रभाकरो हिमवता परिक्षिप्तः।
नवनस्य मध्ये रत्नमयस्सर्वतोवृत्तः ॥११॥

नमात्रोऽच्छ्रितस्तावद्विस्तृतश्च। सर्वतोवृत्तो रत्नमयत्वात्प्रभाकरश्च ः। हिमवता पर्वतेन परिक्षिप्तो नन्दनवनस्य मध्ये भवति। भू- निर्गतो मेरुरित्याह। तथाच मयः। (सूर्यसिद्धान्ते भूगोला- ३२—३४।)

"मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।
बिभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम्॥
तदन्तरपुटास्सप्त नागासुरसमाश्रयाः।
दिव्यौषधिरसोपेता रम्याः पातालभूमयः॥
अनेकरत्ननिचयो जाम्बूनदमयो गिरिः।
भूगोलमध्यगो मेरुरुभयत्र विनिर्गतः॥"

मेरुवडवामुखाद्यवस्थानप्रदेशमाह।
मेरु योजनमात्र ऊंचा है और योजनमात्र विस्तृत है, सब ओर से रत्नमय होने से प्रकाशवान् है। हिमवान् पर्वत से परिक्षिप्त नन्दन में अवस्थित है॥ जैसा कि सूर्यसिद्धान्त में लिखा है:—ब्रह्मा की

धारणात्मिका परमाशक्ति के ऊपर यह भूगोल अण्ड (ब्रह्माण्ड) के बीच काश में भ्रमण करता हुआ अवस्थित है ॥ उस भूगोल के भीतर नाग असुर आदि मनुष्य विशेष के निवास को ७ पाताल कहते हैं (अतल, वि सुतल, तल तलातल, रसातल, पाताल, जिन में अनेक प्रकार स्वप्रकाश रमणीक ओषधि हैं ॥ (सू० सि अ० १२ श्लोक ३२।३४) ॥११॥

स्वर्मेरू स्थलमध्ये नरको वडवामुखश्च जलमध्ये ।
अमरमरा मन्यन्ते परस्परमधस्स्थतान्नियतम् ॥१२॥

मेरुभागगतं भूमेरर्धं भूप्राचुर्यात्स्थलसंज्ञम् । वडवामुखमर्धं जलप्राचुर्या ससंज्ञम् । तत्र स्थलमध्ये मेरुस्स्वर्गश्च भवति । जलमध्ये नरको वडवामु भवति । अमरास्स्वर्गवासिनः । मरा नरकवासिनः । स्वर्गवासिनोऽस्माकम स्स्थिता नरकवासिन इति मन्यन्ते । नरकवासिनश्च तथास्माकमधस्स्थि स्स्वर्गवासिन इति मन्यन्ते ।

"उपरिष्टात् स्थितास्तस्य सेन्द्रा देवा महर्षयः ।
अधस्तादसुरास्तद्वद्द्विषन्तोऽन्योन्यमाश्रिताः ॥"

इति । (सूर्यसिद्धान्ते भूगोलाध्याये श्लो० ३५ ।) तस्य मेरोरिति शेषः ।

"ततः समन्तात्परिधिः क्रमेणायं महार्णवः ।
मेखलावत् स्थितो धात्र्या देवासुरविभागकृत् ॥"

इति च (तत्रैव श्लो० ३६ ।) ॥ स्थलजलांशयोस्सन्धौ भूमेः परितो भू रिधिचतुर्थभागान्तरालव्यवस्थिताश्चतस्रो नगरीराह ।

भा०:-मेरु भागगत भूमि का आधा भाग मृतिका की अधिकता स्थल संज्ञक है। और वडवामुख शेष आधा भाग जल की अधिकता से नर संज्ञक है। उस स्थल में मेरु (स्वर्ग) रहता है। जल में वडवामुख (नर क) है। अमर, (स्वर्गवासी) मरा (नरकवासी) स्वर्गवासी गण समझ हैं कि नरकवासी लोग हमारे नीचे रहते हैं एवं नरकवासी गण जानते कि स्वर्गवासी गण हमारे नीचे रहते हैं ॥ १२ ॥

उदयो योलङ्कायां सो ऽस्तमयस्सवितुरेव सिद्धपुरे ।
मध्यान्हो यवकोट्यां रोमकविषये ऽर्धरात्रस्स्यात् ॥१३॥

लङ्का दक्षिणादिग्गता । तस्यां च उदयः । यदा सूर्योदय इत्यर्थः । सिद्धपुरे च पश्चिमगयः । तदानेरस्तमयस्तादित्यर्थः । सिद्धपुरी नाम नगर्युत्तरदिशि

... भवति। स एव लङ्कोदयो यवकोट्यां मध्याह्नस्स्यात्। तदा ... इत्यर्थः। पूर्वदिशि यवकोटिसंज्ञा नगरीत्यनेनोक्तं भवति। रोम- स एवोदयोऽर्धरात्रस्स्यात्। पश्चिमदिशि स्थिता सा नगरीत्यनेनोक्तं ति। तथाच गदः (तत्रैव श्लो० ३७-४१।)

"समन्तान्मेरुमध्यात्तु तुल्यभागेषु तोयधेः।
द्वीपेषु दिक्षु पूर्वादिनगर्यो देवनिर्मिताः॥
भूवृत्तपादे पूर्वस्यां यवकोटीति विश्रुता।
भद्राश्ववर्षे नगरी स्वर्णप्राकारतोरणा॥
याम्यायां भारतवर्षे लङ्का तद्वन्महापुरी।
पश्चिमे केतुमालाख्ये रोमकाख्या प्रकीर्तिता॥
उदक् सिद्धपुरी नाम कुरुवर्षे प्रतिष्ठिता।
तस्यां सिद्धा महात्मानो निवसन्ति गतव्यथाः॥"

इति॥ रवेस्समन्ताद्भ्रमणात्प्रतिदेशं कालभेदस्य पूर्वादिदिग्विभागोऽत्र ...मधिकृत्य मेरुस्थानात् कृतः॥ मेरुलङ्कयोर्बडवामुखलङ्कयोश्चान्तरालप्रदेशं ...ज्जयिन्योरन्तरालप्रदेशञ्चाह।

भा०—जिस समय लङ्का (दक्षिण दिशा में) में सूर्योदय होता, उस ...य सिद्धपुरी (उत्तर दिशा में है) में सूर्यास्त, यव कोटी में मध्यान्ह (पूर्व ...ा में है) और रोमक नगर (पश्चिम दिशा में है) में आधीरात होती है॥१३॥

स्थलजलमध्याल्लङ्का भूकक्ष्याया भवेच्चतुर्भागे।
उज्जयिनी लङ्कायास्तच्चतुरंशे समोत्तरतः॥१४॥

स्थलमध्यान्मेरुस्थानात् भूकक्ष्यायाश्चतुर्भागान्तरे लङ्का भवति। तथा जल ...ाद्बडवामुखस्थानाच्च भूकक्ष्यायाश्चतुर्भागान्तरे लङ्का भवति। लङ्कावरसिद्ध- ...यवकोटिरोमकविषयाश्च स्थलजलमध्याद्भूकक्ष्याचतुर्भागे भवन्ति। लङ्का- ...समोत्तरदिशि चतुरंशे। भूकक्ष्याचतुर्भागस्य चतुरंशे। भूकक्ष्यायाष्षोडशांशे। ...यिनी नाम नगरी भवति। उज्जयिनी लङ्कायास्समोत्तरदिशि भूकक्ष्याया ...शांशे। इति केचिद्वदन्ति। तैरप्यान्तरन्तु प्रदर्शितम्।

"लङ्कोत्तरतोऽवन्ती भूपरिधेः पञ्चदशभागे॥"

...ते ब्रह्मगुप्तः॥ भूपृष्ठस्थितैर्ज्योतिश्चक्रस्य द्रष्टव्यदृश्यत्व भागमाह।

भा०—स्थल मध्य से अर्थात् मेरुस्थान से भू कक्षा के चतुर्थ भाग अन्तर

लङ्का है। जल स्थान से अर्थात् यद्वा मुख स्थान से चतुर्थ भाग अन्तरा
तङ्का है। लङ्का की नाईं सिद्धपुर, यवकोटी और रोमक भी भूकक्षा के चतु
। अन्तराल में है। लङ्का के समान उत्तरदिशा में भूकक्षा के चतुर्थ अंश
के भाग में अर्थात् १६ अंश पर उज्जयिनी नगरी है ॥ १५ ॥

भूव्यासार्धेनोनं दृश्यं देशात्समाद्भगोलार्धम् ।
अर्धं भूमिच्छन्नं भूव्यासार्धाधिकञ्चैव ॥१५॥

समाद्देशात् पर्वतादिव्यवधानरहिताद्भूपृष्ठाद्भगोलार्धं ज्योतिश्चक्रस्योपर्यर्धं
ासार्धेनोनं भूव्यासार्धतुल्यांशहीनं दृश्यं भवति। अपरमर्धं भूव्यासार्धेना-
कं भूमिच्छन्नमदृश्यं भवति। एतदुक्तं भवति। ज्योतिश्चक्रस्य यदूर्ध्वार्धं तस्य
भागे भूव्यासार्धतुल्योंऽशोऽस्माभिरदृश्यो भवति भूपृष्ठव्यवधानात्। तथा प-
मभागेऽपि भूव्यासार्धतुल्यांशोऽस्माभिरदृश्यो भवति। अतस्ताभ्यामंशाभ्यां
मुपर्यर्धं समदेशे भूपृष्ठेऽवस्थितैर्दृश्यं भवति। अपरमर्धं ताभ्यामंशाभ्यां युतं
मच्छन्नत्वात् समदेशे भूपृष्ठेऽवस्थितैरदृश्यं भवति॥ ज्योतिश्चक्रे देवासुर दृश्य-
माह।

भा०:-सम देश से अर्थात् पर्वत आदि से व्यवधान रहित भूपृष्ठ से भगोलार्द्ध
तिश्चक्र के ऊपर का आधा-भूव्यासार्द्ध से ऊन-अर्थात् भूव्यासार्द्ध तुल्यांश
। दृश्य होता है। दूसरा आधा भूव्यासार्द्ध से अधिक भूमिछन्न-अदृश्य
ा है। आशय यह है कि भूपृष्ठ के व्यवधान से ज्योतिश्चक्र का जो ऊर्ध्व
भाग है उस के पूर्व भाग में भूव्यासार्द्ध तुल्यांश हम लोगों से अदृश्य होता है।
पश्चिमभाग में भूव्यासार्द्ध तुल्यअंश हम लोगों से अदृश्य होता है। इस
ण उन अंशों से हीन ऊपर नीचे देश में भूपृष्ठ में अव स्थित पुरुष से
होता है। दूसरा अर्द्ध उन अंशों से युक्त भूमि से छिपे होने से समदेश
पृष्ठ पर अवस्थित पुरुष से अदृश्य होता है ॥ १५ ॥

देवाः पश्यन्ति भगोलार्धमुदङ्मेरुसंस्थितास्सव्यम् ।
अपसव्यगं तथार्धं दक्षिणवडवामुखे प्रेताः ॥१६॥

उदग्गतमेरुसंस्थिता देवास्सव्यं भगोलार्धं ज्योतिश्चक्राभिमुखस्य लङ्कास्
रूपस्य सव्यभागगतं पश्यन्ति। उदग्गतमर्धमित्यर्थः। दक्षिणभागगतम
े स्थिताः प्रेता नरकवासिनोऽपसव्यगं दक्षिणभागगतमर्धं पश्यन्ति

ादिगमुदगर्धं देवाः पश्यन्ति। तुलादिगं दक्षिणमर्धं नरकवासिनः पश्यन्ति। र्थः। केचिदेवं वदन्ति। ज्योतिश्चक्रस्योदगर्धं सव्यं सव्यगं मेरुस्था देवाः यन्ति। दक्षिणमर्धमपसव्यगमसुराः पश्यन्ति। तथाच ब्रह्मगुप्तः।

"सौम्यमपमण्डलार्धं मेषाद्यं सव्यगं सदा देवाः।
पश्यन्ति तुलाद्यर्धं दक्षिणमपसव्यगं दैत्याः॥"

इति। अत्रैवं योज्यम्। मेरुवडवामुखयोर्ज्योतिश्चक्रवद्भ्रमतां देवासुराणां व्यगमपसव्यगञ्चेति। अपसव्यगशब्दो हि दक्षिणवाचकः। देवादीनां दिनप्र- ाणमाह।

भा०ः—मेरुनिवासी (देवगण) ज्योतिश्चक्र के उत्तर गोलार्द्ध को देखते और दक्षिण मेरुनिवासी (प्रेत) असुरगण दक्षिण गोलार्द्ध को देखते हैं। र्यात् मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, इन छः राशि पर्य्यन्त भगोलार्द्ध को वगण देखते, उस समय दक्षिण मेरुनिवासी (असुर) तुला, वृश्चिक, धनु, कर, कुम्भ, मीन, राशि पर्य्यन्त दक्षिण गोलार्द्ध को देखते हैं॥ १६॥

रविवर्षार्धं देवाः पश्यन्त्युदितं रविं तथा प्रेताः।
शशिमासार्धं पितरश्शशिगाः कुदिनार्धमिह मनुजाः॥१७

रविवर्षार्धं मेषमासादिकन्यामासान्तं देवास्सदोदितं रविं पश्यन्ति मेषा- दिकन्यान्तराशीनां मेरुक्षितिजादूर्ध्वंगतत्वात् क्षितिजवच्चक्रभ्रमणाच्च। अतो ेषादिमासषट्के देवानां दिनं भवति। तुलामासादि मीनमासान्तं देवा रविं दाचिदपि न पश्यन्ति तुलादिराशिषट्कस्य मेरुक्षितिजादधोगतत्वात् क्षिति- ानुसारेण चक्रभ्रमणाच्च। अतस्तुलादिमासषट्कं देवानां रात्रिर्भवति। तथा ेताः। नरकवासिनश्च तथा रविवर्षार्धं रविं पश्यन्ति। किन्तु तुलामासादि ीनमासान्तं रविं पश्यन्ति। अतस्तदा तेषां दिनं भवति। मेषमासादि मीन- ासान्तं रविं कदाचिन्न पश्यन्ति॥ अतस्तदा तेषां रात्रिर्भवति। मेरुवडवा ुखयोरूर्ध्वाधोदिशौ व्यत्ययाद्भवतः। अतस्तयोर्दिनरात्री च व्यत्ययेन भवतः॥ षादिमासषट्कं देवानां दिनमिति यो व्यवहारस्स तु तत्र वैदिककर्मणां विहितत्वात् कृतः कर्क्यादिमासषट्के अविहितत्वात्तेषां रात्रिरिति च व्यवहारः कृतः। अत्र वराहमिहिरः।

"मेषवृषमिथुनसंस्थे दिनमर्के कर्कटादिके रात्रिः।
मेरुस्थितदेवानामिति वैकर्त्तनसंज्ञः॥"

इति ॥ शशिगाश्शशिनमण्डलोर्ध्वभागगता पितरश्शशिमासस्य चान्द्रमासस्यार्धं रविं पश्यन्ति । शशिमासस्यापरार्धं न पश्यन्ति । अतः पितृणां चान्द्रमासार्धं दिनं भवति । तदर्धं रात्रिश्च । अमावास्यायां हि चन्द्रमण्डलादूर्ध्वगतोऽर्को भवति । अतस्तदानीं पितृणां दिनार्धं भवति । पौर्णमास्यां चन्द्रमण्डलादधोगतोऽर्कः । अतस्तदा पितृणां रात्र्यर्धं भवति । अष्टम्यर्धयोरुदयास्तमयौ च । कुदिनार्धमिह मनुजाः । मानुजास्सावनदिनस्यार्धं रविं पश्यन्ति । अपरमर्धं न पश्यन्ति । गोलकल्पनानार्याद्वयेनाह ।

भा०:—मेष, वृष, मिथुन, कर्कट, सिंह, कन्या, इन छः मास पर्य्यन्त देवगण सदा सूर्य्य को उदित देखते हैं, इस कारण देवताओं का छः मास का एक दिन होता है । और तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन, इन छः मास पर्य्यन्त देवगण सूर्य को नहीं देखते अतएव इन छः मास की उनकी एक रात्रि होती है । और प्रेत या असुरगण तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन, इन छः मास पर्य्यन्त सूर्य को सदैव उदित देखते इस लिये असुरों को छः मास का एक दिन होता है । एवं मेष, वृष, मिथुन, कर्कट, सिंह, कन्या, इन छः मास पर्य्यन्त असुरगण सूर्य को नहीं देखते इस कारण इतने समय इनकी छः मास की एक रात्रि होती है । और पितृगण (चन्द्रलोकनिवासी) चान्द्र मास के आधे भाग पर्य्यन्त सूर्य्य को देखते हैं अतएव इनका हमारे १५ दिन का एक दिन होता एवं इतने ही (१५) की उनकी एक रात्रि होती है। क्यों कि अमावास्या को चन्द्रमण्डल के उपरले भाग में सूर्य दीख पड़ता इस कारण पितृगण को उस समय मध्यान्ह होता है और पौर्णमासी को चन्द्रमण्डल से नीचे सूर्य्य रहता अतएव उस समय पितृगण की आधीरात होती है । और कृष्णपक्ष के अष्टमी को पितृ लोगों का सूर्य्योदय और शुक्लपक्ष की अष्टमी को सूर्यास्त होता है । मनुष्यों को सावन दिन के आधा भाग पर्य्यन्त सूर्य्य दीखता एवं अपरार्द्ध नहीं दीखता ॥ १७ ॥

पूर्वापरमधऊर्ध्वं मण्डलमथ दक्षिणोत्तरञ्चैव ।
क्षितिजं समपार्श्वस्थं भानां यत्रोदयास्तमयौ ॥ १८ ॥

वंशशलाकादिना निर्मितमेकं मण्डलं वृत्तं पूर्वापरमधऊर्ध्वं निदध्यात् । तत् सममण्डलं नाम भवति । तत्प्रमाणमेवापरं मण्डलं दक्षिणोत्तरमधऊर्ध्वं निदध्यात् । तद्दक्षिणोत्तरास्थं भवति । पुनरन्यन्मण्डलं तत्प्रमाणं समपार्श्वस्थं

वृत्त रचना करे। यह स्वदेशीय अक्षांश परिमित उत्तर और दक्षिण ध्रु
दूर अवस्थित होगा और इस वृत्त का नाम 'उन्मण्डल' होगा। इसी
मण्डल में सूर्य जब दीख पड़ता है उस समय दिन और रात्रि का ह्रास
वृद्धि होती है ॥ १९ ॥

पूर्वापरदिग्रेखाधश्चोर्ध्वा दक्षिणोत्तरस्था च।
एतासां संपातो द्रष्टा यस्मिन् भवेद्देशे ॥२०॥

पूर्वापरदिग्गता या रेखा या चाधऊर्ध्वदिग्गता दक्षिणोत्तरदिग्गता च
तासां संयोगो द्रष्टृस्थाने भवति॥ दृङ्मण्डलं दृक्क्षेपमण्डलञ्चाह।

भा०:-पूर्वापर दिग्गत रेखा जो नीचे ऊपर को गई है, दक्षिणोत्तर
दिग्गत है, उस का संयोग स्थान द्रष्टा का स्थान होता है ॥ २० ॥

ऊर्ध्वमधस्ताद्द्रष्टुर्ज्ञेयं दृङ्मण्डलं ग्रहाभिमुखम्।
दृक्क्षेपमण्डलमपि प्राग्लग्नं स्यात्त्रिराश्यूनम् ॥२१॥

ऊर्ध्वाधोगतं द्रष्टृमध्यमिष्टग्रहाभिमुखं दृङ्मण्डलं भवति। पूर्वोक्तमण्डलानि
भूमध्यमध्यानि। इदन्तु भूपृष्ठस्थितद्रष्टृमध्यं भवति। त्रिराश्यूनं प्राग्लग्नं दृ
क्क्षेपमण्डलं भवति। इत्यर्थः। दृङ्मण्डलदृक्क्षेपमण्डलयोर्लम्बनविधावुपयोग
गोलं यन्त्रेण भ्रामयन्ति केचित्। तत्रोपायं प्रदर्शयति।

भा०:-ऊपर नीचे को गया हुआ द्रष्टा का मध्य इष्टग्रहाभिमुख दृङ्मण्डल
होगा। पूर्वोक्त मण्डल सब भूमध्य मध्य है। यह तो भू पृष्ठस्थित द्रष्टा मध्य
हुआ। अर्थात् तीन राशि ऊन प्राग् लग्न दृक्क्षेप मण्डल होता है ॥२१॥

काष्ठमयं समवृत्तं समन्ततस्समगुरुं लघुं गोलम्।
पारततैलजलैस्तं भ्रमयेत्स्वधिया च कालसमम् ॥२२॥

काष्ठमयं वंशादिकाष्ठे निर्मितं न समवृत्तं सर्वतोवृत्तं समन्ततस्समगुरुं स-
र्वावयवेषु समं गुरुत्वं यथा भवति तथा कृतम्। लघुमगुरुम्। एवंभूतं गोलं कृत्वा
पारतादिभिस्तं स्वधिया च कालसमं भ्रमयेत्। अयमर्थः। भूमिष्ठदक्षिणोत्तरस्त
म्भयोरुपरि गोलप्रोतायश्शलाकाया अग्रे स्थापयेत्। गोलदक्षिणोत्तरच्छिद्रे च
तैलेन सिञ्चेत् यथा निस्सङ्गो गोलो भ्रमति। गोलस्यापरतो गोलपरिधिसंमि-
तदैर्घ्यं साधश्छिद्रं जलपूर्णं नलकं निदध्यात् ततो गोलस्यापरस्वस्तिके कीलकं
निधाय तस्मिन्सूत्रस्यैकमग्रं बद्ध्वाधो विषुवन्मण्डलपृष्ठेन प्राङ्मुखं नीत्वा

अपयांकृष्य प्रत्यङ्मुखं तेनैव नीत्या तदग्रबद्धं पारतपूर्णमलाबु जलपूर्णे न-
निदध्यात् ततो नलकस्याधश्छिद्रं विवृतं कुर्यात् तेन जलं निस्स्रवति। न-
स्थजलमधो गच्छति। तद्वशाच्च तत्रस्थमलाबु पारतपूर्त्या गुरुत्वाज्जलेन स-
ो गच्छद् गोलं प्रत्यङ्मुखमाकर्षति। एवं त्रिंशद्घटिकाभिरर्धसम्मितं यथा
भवति गोलस्य चार्धं भ्रमति तथा स्वबुद्ध्या जलनिस्स्रावो योज्यः। इति।
ोऽयं घटिकायन्त्रात् कालपरिच्छेदसाधनमेव नतु (ज्योतिश्चक्रभ्रमणसाधनम्)
तिश्चक्रे हि समोदितौ गुरुचन्द्रौ प्रतिमुहूर्तं स्थानान्तरितौ दृश्येते। अस्मिन्न
दृश्येते। अतो घटिकायन्त्रसमोऽयं गोलः। नतु ज्योतिश्चक्रसमः। क्रान्ति
ाकाग्राशङ्कुशङ्क्वग्रसमशङ्क्वादीनामुपपत्तिज्ञानं हि गोलप्रयोजनम्॥ अथ
तिश्चक्रस्यैव्योर्भिः क्षेत्रविशेषान् प्रदर्शयिष्यन् क्षेत्रकल्पनाप्रकारमहावल-
ी चाह।

भा०:-वंश आदि काष्ठ का बना हुआ सब ओर से बराबर एवं सम गुरु
ारी) वृत्त (हलका और बहुत भारी नहीं) इस प्रकार काष्ठगोल बनाकर
से या अपनी बुद्धि से विचार कर किसी अन्य उपयुक्त वस्तु से काल के
ाबर भ्रमण करावे। इस का अभिप्राय यह है कि-भूपृष्ठ के दक्षिण उत्तर
भ के ऊपर गोल प्रोत लोहे के शलाके के आगे में स्थिर करे। गोल के द-
णोत्तर छिद्र में तेल से इस प्रकार सींचे जिस से निरवद्य होकर भ्रमण करे।
ल के दूसरी ओर से परिधि सम्मित दीर्घ छिद्र के साथ जल से भरा नलक
ल) रक्खे, तदनन्तर गोल के ऊपर स्वस्तिक पर कीलक गाड़े,-एवं उस
के एक अग्रभाग को बांध कर, विषुवन्मण्डल पृष्ठ द्वारा प्राङ्मुख लाकर
र को खींच कर उसी से प्रत्यङ्मुख लाकर उस को अग्रभाग को बांधकर,
े से भरी तुम्बी जल भरे हुए नलक में रक्खे, तब नलक के नीचे के छिद्र
फैलावे-उस से जल गिरता है। और नलक में जल नीचे आता है, इस
रण यहां की तुम्बी पारे से भरे होने से भारीपन से जल के साथ नीचे
ाती हुई गोल को पूर्व की ओर खींचती है। एवं ३० घटिका में आधे भाग
जितने जल में से गिरे उतना जल गिरने योग्य अपनी बुद्धि से रक्खे ॥२२॥

दृग्गोलार्धकपाले ज्यार्धेन विकल्पयेद्भगोलार्धम्।
विषुवज्जीवाद्भुजा तस्यास्त्ववलम्बकः कोटिः॥२३॥

दृग्गोलार्धकपाले दृश्ये गोलार्धभागे ज्यार्धेन सम सोत्तपादविवर्जन ज्या-
ख्यादिभुजात्मनावलम्बकादिकोटयात्मना च विर्तन भगोलार्धं वि...

[illegible] हृत्वा। तत्र लब्ध-
त्वाल्लङ्कोदयप्राग्ज्या भवति। लङ्कायां तद्भुजाभागगतराश्युदयकालजाता प्राग्ज्या
भागपरमपडलज्या। घटिकामण्डलज्येत्यर्थः। सा चापितोदयास्तमितिर्भवति।
एवं भुजाभागस्योदयप्रमाणानयनम्। प्रतिराशिमानन्तु। इष्टराशेस्तदादन्त्यभुजा-
भ्यां पृथक्प्राग्मानद्वयमानीय तयोरन्तरं कुर्यात्। तदिष्टराशेर्लङ्कोदयमानं
भवति। मेषादितस्तुलादितश्च क्रमेण भुजायाः प्रवृत्तिः। अतस्तत्र राश्युदयाश्च
क्रमेण भवन्ति। कन्यान्तान्मीनान्तश्चोत्क्रमेण भुजायाः प्रवृत्तिः। अतस्तत्र राश्युदया-
श्चोत्क्रमेण भवन्ति। अत्रैवं त्रैराशिकम्। यदि त्रिज्यया परमापक्रमस्वाहोरात्रार्ध-
तुल्या कोटिर्लभ्यते तदेष्टज्यया कियतीतीष्टस्वाहोरात्रार्धगतेष्टकोटिलब्धिः। य-
द्येष्टस्वाहोरात्रार्धे इयती कोटिस्तदा व्यासार्धे कियतीति घटिकामण्डलगतरा-
श्युदयज्यालब्धिः। अत्र प्रथमत्रैराशिके व्यासार्धं भागहारः। द्वितीये गुणकारः
तयोर्गुणकारहारयोस्तुल्यत्वात्तदुभयं विना कर्म क्रियते। दिननिशोः क्षयवृद्ध्या-
नयनमाह।

भा०:—परमापक्रम साधित स्वाहोरात्रार्द्ध को इष्ट भुजज्या से गुणन कर,
उस भुजज्या से साधित इष्ट स्वाहोरात्रार्द्ध द्वारा भाग देवे भाग फल मेष
राशि से लङ्कोदय प्राग्ज्या होता है ॥ २५ ॥

इष्टापक्रमगुणितामक्षज्यां लम्बकेन हृत्वा या।
स्वाहोरात्रे क्षितिजा क्षयवृद्धिज्या दिननिशोस्सा॥२६॥

इष्टापक्रमज्ययाक्षज्या निहत्य लम्बके हृत्वा यल्लभ्यते सा स्वाहोरात्रे स्वा-
होरात्रमण्डलनिष्पन्ना दिननिशोः क्षयवृद्धिज्या क्षितिज्या क्षितिजमण्डलादुत्प-
न्ना। क्षितिज्येत्यर्थः। अत्रैवं त्रैराशिकम्। यद्यक्षलम्बककोट्याक्षज्या भुजा तदा-
पक्रमकोट्या का भुजेति ज्यालब्धिः। सा स्वाहोरात्रनिष्पन्ना। अतस्तां त्रिज्यया
निहत्य स्वाहोरात्रेण विभजेत्। तत्र लब्धा चरदलज्या भवति। अत्रैवं त्रैराशि-
कम्। यदा स्वाहोरात्रे इयती ज्या तदा व्यासार्धमण्डले कियतीति व्यासार्धमण्डल-
ज्यालब्धिः। चरज्याचापिताश्चरदलासवो भवन्ति। स्वदेशराश्युदयमाह।

भा०:—इष्टापक्रमज्या से अक्षज्या को गुणनकर लम्बक से भाग दे, भाग
फल को स्वाहोरात्रार्द्ध में स्वाहोरात्रमण्डल निष्पन्न दिन रात के क्षय वृद्धि
ज्याक्षितिज्या, क्षितिज मण्डल से उत्पन्न क्षितिज होता है ॥ २६ ॥

उदयति हि चक्रपादश्चरदलहीनेन दिवसपादेन।
प्रथमो [illegible]

प्रथमश्चक्रपादो मेषवृषमिथुनाख्यश्चरदलहीनेन दिवसपादेन। चरद
भिः पञ्चदशघटीभिः । उदयति । अन्त्यश्च मीनघटमृगाख्यस्तथा चरदलहं
पञ्चदशघटिकाभिरुदयति। अतो मृगादिमिथुनान्तानां षण्णां लङ्कोदयाः
श्चरदलासुभिर्हीनाः स्वदेशोदया भवन्ति । अथान्त्यौ तत्सहितेन । कर्का
न्याख्यस्तुलालिचापाख्यश्च चक्रपादौ चरदलसहितेन दिवसपादेनोदयतः
कर्कादिचापान्तानां षण्णां राशीनां लङ्कोदयास्तत्तच्चरदलयुताः स्वदेशोदय
न्ति । क्रमोत्क्रमतः । प्रथमपादे प्रथमराशेर्मेषस्य लङ्कोदये प्रथमराशिभवं
लं शोध्यम्। वृषस्य द्वितीयस्य लङ्कोदये द्वितीयराशिभवं चरदलं शोध्यम्
तीयस्य मिथुनस्य लङ्कोदये तृतीयराशिभवं चरदलं शोध्यम्। द्वितीयपादे
मेण देयम् । कर्कटस्य तृतीयराशिचरदलं देयम्। सिंहस्य द्वितीयराशिचरद
यम्। कन्यायाः प्रथमराशिचरदलं देयम् । तृतीयपादे क्रमेण देयम् । चतुर्थे
उत्क्रमेण शोध्यम् । इत्युक्तं भवति । गोलस्योत्तरोन्नतत्वान्मीनादयश्शीघ्र
न्ति । अतस्तेषु चरदलं शोध्यम् । तस्मादेव कर्कटादयश्शनैरुद्यन्ति । अत
चरदलं देयम् ॥ इष्टकाले शङ्क्वानयनमाह ।

भा०—प्रथम चक्र पाद अर्थात् मेष, वृष, मिथुन नामक है। चर
हीन द्वारा दिवसपाद से अर्थात् १५ घटिका करके उदय होता है। अ
अन्त्य अर्थात् मीन, कुम्भ, मकर, नामक पाद है, सो १५ घटिका करके उ
होता है , इसलिये मकर, कुम्भ, मीन, मेष, वृष, मिथुन, इन छः राशियों
उदयास्त १५ प्राण हीघटा करके स्वदेशोदय होता है ॥ और कर्क, सिंह, कन्
तुला, वृश्चिक, धनु, क्रम से प्रथम तीन राशि द्वितीय पाद और दूसरा ती
राशि तृतीय पाद है। १५ घटिका जोड़ने से उदय होता है। अतएव कर्का
धनु पर्य्यन्त छः राशियों का लङ्कोदय उस उस १५ प्राण के जोड़ने से स्वदेशो
होता है। प्रथम पाद में प्रथम राशि मेष राशि के लङ्कोदय में प्रथम राशि
उत्पन्न चरदल घटावे। वृष राशि अर्थात् द्वितीय राशि के लङ्कोदय में द्वित
राशि भव चरदल घटावे। तृतीय मिथुन राशि के लङ्कोदय में तृतीय रा
भव चरदल घटावे। और द्वितीय पाद में कर्कट राशि का तृतीय चरद
जोड़े। सिंह राशि के तृतीय राशि के चरदल जोड़े। चतुर्थ पाद में उत्क्र
करके घटावे। गोल के उत्तर उन्नत होने से मीन आदि राशि शीघ्र उद
होती हैं, अतएव उन में चरदल घटाया जाता है। और कर्कट आदि रा
धीरे २ उदय होती हैं इस लिये उन में चरदल जोड़ा जाता है ॥२४॥

भा०:—दृग् हेतुभूत अपनी छाया या दृग्ज्या या दृक् क्षेपज्या है। यह क्षितिज में आकाश मध्य से क्षितिज के अन्त तक होती है। अर्थात् र्द्ध तुल्य होती है, तत्र भूमि वशतः निष्पन्न (उत्पन्न) दृग्भेद व्यासार्द्ध है। अर्थात् भूव्यासार्द्ध तुल्य दृग्भेद योजन होता है। बीज में त्रैराशिक स्थापना करे। अतएव दृग्गतिज्या को भूव्यासार्द्ध द्वारा गुणन कर त्रिज्या से देवे भागफल दृग्भेद योजन होता है। ग्रहण में वह लम्बन होता है। पज्या को भूव्यासार्द्ध से गुणन कर त्रिज्या से भाग देवे भागफल ग्रहण में योजन होता है। दृग्ज्या से इस प्रकार लब्ध दृङ्मण्डल गत कर्णरूप ल-योजन होता है। इस के द्वारा ग्रहण में व्यवहार नहीं किया जाता ॥३४॥

विक्षेपगुणाक्षज्या लम्बकभक्ता भवेदृणमुदक्स्थे।
उदये धनमस्तमये दक्षिणगे धनमृणं चन्द्रे ॥ ३५ ॥

विक्षेपगुणिताक्षज्या लम्बकभाजिता लिप्तात्मकं दृक्फलं भवति। उदक्स्थे। पण्डलादुदक्स्थे चन्द्रे। उदये ऋणम्। उत्तरविक्षेप उदयविषये तद्दृक्फलं ऋणं कार्यमित्यर्थः। अस्तमयविषये तत्फलं चन्द्रे धनं कुर्यात्। दक्षिणगे णं चन्द्रे। दक्षिणविक्षेप उदयविषये तत्फलं चन्द्रे धनं कार्यम्। तत्काल-एतत् क्रियते। एतदाक्षं दृक्कर्म॥ आयनं दृक्कर्माह।

भा०:—विक्षेप गुणित अक्षज्या लम्बक से भाग देने पर भागफल लिप्तात्मक ल होता है। अपमण्डल से उदक्स्थ चन्द्रमा में, उदय में ऋण करना च-उत्तर विक्षेप में उदय विषय में उस दृक्फल चन्द्रमा में ऋण करना चे। अस्तमय विषय में उस फल को चन्द्रमा में धन करे। दक्षिण वि-उदय विषय में उस फल को चन्द्रमा में धन करे। इस को आक्षदृक् कहते हैं ॥ ३५ ॥

क्रमगुणमुत्क्रमणं विस्तरार्धकृतिभक्तम्।
धनमुदगयने दक्षिणगे धनमृणं याम्ये ॥ ३६ ॥

विक्षेपापक्रमगुणम्। सायनचन्द्रस्योत्क्रमज्यं कोटिज्या उत्क्रमज्ये-परमापक्रमेण च निहत्य विस्तरार्धस्य व्यासार्धस्य कृत्या। तत्र लब्धं लिप्तात्मकदृक्फलं भवति॥ उदगयनधनमुदगयने दक्षिणये। उदग्विक्षेपे तत्फलं चन्द्रे ऋणं भवति। तत्र दक्षिणगे विक्षेपे तत्फलं भवति। उदग्दक्षिणगे च क्रमादृणम्। इति योज्यम्॥ धनहृणं याम्ये।

श च्छेद्यके ज्ञेया। तदन्यत्र प्रदर्शितम्। मध्यलग्नन्तु पूर्वाह्णे नतासुभ्यो रवि
तराशिभागादुत्क्रमेण लङ्कोदयासून्विशोध्य तावतो राशीन् रवौ विशोध्य
ध्यम्। अपराह्णे तु नतप्राणेभ्यो रविस्थितभागात् क्रमेण लङ्कोदयासून्विशो
तावतो राशीन् रवौ प्रक्षिप्य साध्यम्। दृग्गतिज्यालम्बनयोजनानयनमा

भा०:—मध्य लग्न का दक्षिण अपमधनु और अक्षधनु के योग
जीवा मध्यज्या है। मध्यलग्न के उत्तर अपमधनु और अक्षधनु के अन
जीवा मध्यज्या होती है। क्षितिज में जहां तत्काल लग्न उदय होता है
उस स्थान से और पूर्वापरस्वस्तिक के बीच की जीवा उदयज्या है। साय
लग्न की भुजज्या को अपक्रम क्रान्ति से गुणनकर, लम्बक से भागदेवे, भागफ
उदयज्या होता है। मध्यज्या और उदयज्या के वर्ग में व्यासार्द्ध से भाग दे
भागफल के वर्ग को मध्यज्या वर्ग से घटावे, अवशिष्ट का मूल निकाले व
स्वदृक् क्षेप होगा। जिस ग्रह का या सूर्य या चन्द्रमा का मध्यल
ग्रहण किया जावे उसकी दृक्क्षेपज्या होगी। दृक्क्षेप लग्न और आका
मध्य के बीच की जीवा दृक्क्षेपज्या होती है। सूर्य ग्रहण और चन्द्रग्रह
में मध्यज्या और दृक् क्षेपज्या भिन्न २ साधे॥ ३३॥

दृग्दृक्क्षेपकृतिविशेषितस्य मूलं स्वदृग्गतिः कुवशात्।
क्षितिजे स्वा दृक्छाया भूव्यासार्धं नभोमध्यात्॥ ३४॥

दृग्भेदहेतुभूता स्वच्छाया दृग्ज्या वा स्वदृग्गतिज्या वा दृक्क्षेपज्या वेत्यर्थः। सा
यदि क्षितिजे भवति नभोमध्यात् क्षितिजान्ता भवति। व्यासार्द्धतुल्या भव-
तीत्यर्थः। तदा कुवशाद्भूमिवशान्निष्पन्नो दृग्भेदो व्यासार्धं भवति। भूव्यासार्ध-
तुल्यं दृग्भेदयोजनमित्यर्थः। अन्तराले ऽनुपातात् कल्प्यम्। अतो दृग्गतिज्यां
भूव्यासार्धेन निहत्य त्रिज्यया विभज्य गतं दृग्भेदयोजनं भवति। ग्रहणे तन्नम्य
भवति। दृक्क्षेपज्यां भूव्यासार्धेन निहत्य त्रिज्यया विभज्य लब्धं ग्रहणे
नति योजनं भवति। दृग्ज्यात एवं लब्धं दृङ्मण्डलगतं कर्णरूपं लम्बनयोजनं
भवति। अनेन ग्रहणे न व्यवहारः। युक्तिविषयोऽस्त्वेतदपि वेद्यम्। लम्बनयोजनं
नतियोजनञ्च त्रिज्यया निहत्य स्वेन-स्वेन योजनव्यासेन विभजेत्। तत्र लब्धं
तस्य तस्य लम्बनलिप्ता नतिलिप्ताश्च भवन्ति। अर्केन्द्वोर्नतिलिप्तान्तरं सूर्यग्र-
हणे नतिर्भवति पर्वान्तकालाच्छोध्या। अपराह्णे देया। एवं संस्कृतं पर्वान्तं स्फुट-
शिमासान्तमित्युच्यते॥ चन्द्रादीनामुदयास्तलग्नसिद्धये स्वस्वविक्षेपेण दृक्कर्माह।

भा०:—दृग् हेतुभूत अपनी छाया या दृग्ज्या या दृक् क्षेपज्या है। वह यदि क्षितिज में आकाश मध्य से क्षितिज के अन्त तक होती है। अर्थात् व्यासार्द्ध तुल्य होती है, तब भूमि वशतः निष्पन्न (उत्पन्न) दृग्भेद व्यासार्द्ध होता है। अर्थात् भूव्यासार्द्ध तुल्य दृग्भेद योजन होता है। बीज में त्रैराशिक से कल्पना करे। अतएव दृग्गतिज्या को भूव्यासार्द्ध द्वारा गुणन कर त्रिज्या से भाग देवे भागफल दृग्भेद योजन होता है। ग्रहण में वह लम्बन होता है। दृक्क्षेपज्या को भूव्यासार्द्ध से गुणन कर त्रिज्या से भाग देवे भागफल ग्रहण में नतियोजन होता है। दृग्ज्या से इस प्रकार लब्ध दृङ्मण्डल गत कर्णरूप लम्बन योजन होता है। इस के द्वारा ग्रहण में व्यवहार नहीं किया जाता ॥३४॥

विक्षेपगुणाक्षज्या लम्बकभक्ता भवेदृणमुदक्स्थे।
उदये धनमस्तमये दक्षिणगे धनमृणं चन्द्रे ॥३५॥

विक्षेपगुणिताक्षज्या लम्बकभाजिता लिप्तात्मकं दृक्फलं भवति। उदक्स्थे। अपमण्डलादुदक्स्थे चन्द्रे। उदये ऋणम्। उत्तरविक्षेप उदयविषये तद्दृक्फलं चन्द्रे ऋणं कार्यमित्यर्थः। अस्तमयविषये तत्फलं चन्द्रे धनं कुर्यात्। दक्षिणगे धनमृणं चन्द्रे। दक्षिणविक्षेप उदयविषये तत्फलं चन्द्रे धनं कार्यम्। तत्कालचन्द्र एतत् क्रियते। एतदाद्यं दृक्कर्म ॥ आयनं दृक्कर्माह।

भा०:—विक्षेप गुणित अक्षज्या लम्बक से भाग देने पर भागफल लिप्तात्मक दृक्फल होता है। अपमण्डल से उदक्स्थ चन्द्रमा में, उदय में ऋण करना अर्थात् उत्तर विक्षेप में उदय विषय में उस दृक्फल चन्द्रमा में ऋण करना चाहिये। अस्तमय विषय में उस फल को चन्द्रमा में धन करे। दक्षिण विक्षेप उदय विषय में उस फल को चन्द्रमा में धन करे। इस को आद्यदृक् कर्म कहते हैं ॥ ३५ ॥

विक्षेपापक्रमगुणमुत्क्रमणं विस्तरार्धकृतिभक्तम्।
उदगृणधनमुदगयने दक्षिणगे धनमृणं याम्ये ॥३६॥

उत्क्रमणं विक्षेपापक्रमगुणम्। सायनचन्द्रस्योत्क्रमणं कोट्या उत्क्रमज्येत्यर्थः। तद्विक्षेपेण परमापक्रमेण च निहत्य विस्तरार्धस्य व्यासार्धस्य कृत्या विभजेत्। तत्र लब्धं लिप्तात्मकदृक्फलं भवति॥ उदगृणधनमुदगयने दक्षिणगे। उदगयन उदग्विक्षेपे तत्फलं चन्द्र ऋणं भवति। तत्र दक्षिणगे विक्षेपे तत्फलं चन्द्रे धनं भवति। उदग्दक्षिणगे च क्रमाद्धनम्। इति योज्यम् ॥ ५नष्टं दा...

दक्षिणायनगते चन्द्रे पूर्वक्रमादृनमृणञ्च भवति। उदग्विक्षेपे धनम्। दक्षिणविक्षेप ऋणमित्यर्थः। आचार्येण स्थूलरूपं दृक्फलद्वयमिह प्रदर्शितम्। नतु सूक्ष्मरूपमिति वेद्यम्। अस्मात् स्थूलरूपात् सूक्ष्मरूपं युक्त्या सिद्ध्यतीति भावः यस्य चन्द्रस्योदयास्तलग्नमपेक्षितं तत्र दृक्कर्मद्वयं कार्यं नतु ततोऽन्यत्र॥ चन्द्रार्कभूमिभूच्छायानामर्केन्दुग्रहणयोश्च स्वरूपमाह।

भा०:—विक्षेप क्रमगुण अर्थात् सायन चन्द्रमा के उत्क्रमण को कोटी द्वारा उत्क्रमज्या लावे। उसको विक्षेप और परमापक्रम द्वारा गुणनकर व्यासार्द्ध के कृति (वर्ग) से भाग देवे भागफल लिप्तात्मक दृक्फल होगा। उदगयन उदग् विक्षेप में उसका फल चन्द्रमा में ऋण होता है; उस दक्षिणग विक्षेप में वह फल चन्द्रमा में धन होता है। उत्तर दक्षिणग विक्षेप में क्रम से ऋण होता है। दक्षिणायन गत चन्द्रमा में पूर्व क्रम से धन और ऋण होगा। उत्तर विक्षेप में धन होता है और दक्षिण विक्षेप में ऋण होता है॥३६॥

चन्द्रो जलमर्कोऽग्निर्मृद्भूश्छायापि या तमस्तद्धि।
छादयति शशी सूर्यं शशिनं महती च भूच्छाया॥३७॥

चन्द्रो जलात्मकः। अर्कोऽग्निमयः। भूमिर्मृदात्मिका। तस्या भूमेर्या छाया भूच्छायाख्या सा हि तमः। सूर्यं ग्रहणकाले शशी छादयति नतु राहुः। शशिनं ग्रहणकाले महती भूच्छाया छादयति नतु राहुः॥ ग्रहणकालमाह।

भा०:—जल स्वरूप चन्द्रमा, अग्निस्वरूप सूर्य्य, मृत्तिकामय भूमि हैं भूमि की छाया का नाम अन्धकार है। सूर्य्य ग्रहण में चन्द्रमा सूर्य्य को आच्छादित (ढक) कर लेता है; राहु नहीं। और चन्द्रग्रहण में पृथिवी की छाया चन्द्रमा को ढक लेती है, राहु नहीं॥ ३७॥

स्फुटशशिमासान्तेऽर्कं पातासन्नो यदा प्रविशतीन्दुः।
भूच्छायां पक्षान्ते तदाधिकोनं ग्रहणमध्यम्॥३८॥

स्फुटशशिमासान्ते लम्बनसंस्कृतेऽमावास्यान्तकाले पातासन्नोऽल्पविक्षेपश्चन्द्रो यदार्कं प्रविशति तदाधिकोनं ग्रहणमध्यम्। अधिककालस्याल्पकालस्य चन्द्रग्रहणस्य मध्यं तदा भवतीत्यर्थः। पक्षान्ते पौर्णमास्यन्ते यदा चन्द्रो भूच्छायां प्रविशति तदा चन्द्रग्रहणस्य मध्यं भवति। केचित्तु स्फुटशशिमासान्तं केवलममावास्यान्तं तत्र ग्रहणमूर्ध्वगतं भवति कदाचिदूनमधोगतं भवति। इत्याहुः स्यात्तम्। भूछायादैर्घ्यमाह।

भा०:—लम्बन संस्कृत अमावास्या काल में अल्पविशेष चन्द्रमा जब सूर्य मण्डल में प्रवेश करता है, तब न्यूनतर ग्रहणमध्य होता है। अर्थात् अधिक काल एवं अल्पकाल का चन्द्रग्रहण मध्य होताहै। पौर्णमासी को जब चन्द्रमा भूच्छाया में प्रवेश करता है, तब चन्द्रग्रहण का मध्य होता है॥ ३८॥

भूरविविवरं विभजेद्भूगुणितन्तु रविभूविशेषेण।
भूच्छायादीर्घत्वं लब्धं भूगोलविष्कम्भात्॥ ३९॥

भूरविविवरमर्कस्य स्फुटयोजनतुल्यं तद्भूगुणितं भूव्यासयोजनगुणितं कृत्वा रविभूविशेषेण रविव्यासयोरन्तरेण योजनात्मकेन विभजेत्। तत्र लब्धं भूच्छायाया दैर्घ्यं योजनात्मकं भवति। भूगोलविष्कम्भात् भूव्यासार्धात्। भूगोलस्य मध्यात्प्रभृतीदं छायादैर्घ्यं भवतीत्यर्थः॥ भूच्छायायाश्चन्द्रकक्ष्याप्रदेशे व्यासयोजनानयनमाह।

भा०:—पृथिवी और सूर्य्य का स्फुट योजन तुल्य भूव्यास योजन गुणित सूर्य्यव्यास और भूव्यास के योजनात्मक अन्तर से भाग देव, भागफल भू छाया की चौड़ाई योजनात्मक होती है। पृथिवी के व्यासार्द्ध से अर्थात् भूगोल के मध्य प्रभृति से यह छाया दैर्घ्य होती है॥ ३९॥

छायाग्रचन्द्रविवरं भूविष्कम्भेण तत् समभ्यस्तम्।
भूच्छायया विभक्तं विद्यात्तमसस्स्वविष्कम्भम्॥ ४०॥

छायाग्रचन्द्रविवरं चन्द्रस्य स्फुटयोजनकर्णेन हीनं छायादैर्घ्यमित्यर्थः। तद्भूव्यासेन निहत्य भूच्छायादैर्घ्येण विभजेत्। तत्र लब्धं चन्द्रमार्गे तमसो भूच्छायायास्स्वविष्कम्भो योजनात्मकव्यासो भवति। तं व्यासं त्रिज्याकर्णेन विभजेत्। तत्र लब्धं लिप्तात्मकस्तमोव्यासो भवति। अर्केन्द्वोश्च स्वयोजनव्यासं त्रिज्याकर्णेन निहत्य स्वस्फुटयोजनकर्णेन विभज्य लब्धं लिप्तात्मकस्वव्यासो भवति॥ स्थित्यर्धानयनमाह।

भा०:—चन्द्रमा के स्फुट योजन से कर्ण घटाकर अर्थात् छाया के लम्बाई को भूव्यास से गुणन कर गुणनफल में भूछाया के लम्बाई से भाग देवे; भागफल चन्द्रमा के मार्ग में तम (अन्धकार) अर्थात् भूछाया का स्वकीय विष्कम्भ अर्थात् योजनात्मक व्यास होगा। उस व्यास को त्रिज्या कर्ण द्वारा भाग देवे, भागफल लिप्तात्मक तमोव्यास होगा। सूर्य्य और चन्द्रमा के अपने २ योजन व्यास को

त्रिज्याकर्ण से गुणन कर गुणनफल में अपने २ स्फुट योजन कर्ण द्वारा देने से भागफल लिप्तात्मक अपना २ व्यास होगा ॥ ४० ॥

सम्पर्कार्धस्य कृतेश्शशिविक्षेपस्य वर्गितं शोध्यम्।
स्थित्यर्धमस्य मूलं ज्ञेयं चन्द्रार्कदिनभोगात्॥४१॥

संपर्कार्धस्य कृतेः। सूर्यग्रहणे सूर्येन्द्वोर्बिम्बयोगार्धस्य वर्गाच्छशिनो विक्षेपस्य वर्गितं शोध्यम्। विशोधयेदित्यर्थः। चन्द्रग्रहणे चन्द्रतमसोर्बिम्बयोगार्धस्य वर्गात् केवलस्य चन्द्रविक्षेपस्य वर्गं विशोधयेत्। तत्र यच्छिष्टं तस्य मूलं स्थित्यर्धं भवति। स्थित्यर्धसाधनमित्यर्थः। तत् कथमित्यत्राह। चन्द्रार्कदिनभोगादिति। तस्मान्मूलात् षष्टिघ्नादर्केन्द्वोर्गत्यन्तरेण स्थित्यर्धनाडिका भवन्तीत्यर्थः। चन्द्रग्रहणे तास्स्फुटा भवन्ति। सूर्यग्रहणे तु स्थित्यर्धकालसम्भूतेन लम्बनकालेन युतास्स्फुटा भवन्ति। मध्यकाललम्बनस्पर्शकाललम्बनयोरन्तरेण युतास्स्पर्शस्थित्यर्धनाडिकास्स्फुटा भवन्ति। तथा मोक्षकाललम्बनमध्यकाललम्बनयोरन्तरेण युता मोक्षस्थित्यर्धनाडिकाश्च स्फुटा भवन्तीत्यर्थः॥ विमर्दार्धकालानयनमाह।

भा०ः—सूर्यग्रहण में सूर्य और चन्द्रमा के बिम्ब के योगार्द्ध के वर्ग में चन्द्रमा के विक्षेपवर्ग को घटावे। चन्द्रग्रहण में चन्द्रमा के तम बिम्ब के योगार्द्ध के वर्ग से केवल चन्द्र विक्षेपवर्ग को घटावे। उस से जो शेष बचे उसका मूल निकालने से स्थित्यर्द्ध होगा। उक्त मूल को ६० से गुणनकर—गुणनफल को सूर्य और चन्द्रमा की गति से अन्तर करने पर स्थित्यर्द्ध नाडिका होगी। चन्द्रग्रहण में वे ही स्फुट होंगी। सूर्यग्रहण में तो स्थित्यर्द्ध काल सम्भूत से लम्बन काल को जोड़ने पर स्फुट होंगी। मध्यकाल लम्बन और स्पर्श काल लम्बन से घटाकर जोड़ें तो स्पर्श स्थित्यर्द्ध नाडिका स्फुट होंगी। और मोक्ष काल लम्बन और मध्यकाल लम्बन से घटाकर जोड़ने से मोक्षस्थित्यर्द्ध नाडिका स्फुट होंगी ॥ ४१ ॥

चन्द्रव्यासार्धोनस्य वर्गितं यत्तमोमयार्धस्य।
विक्षेपकृतिविहीनं तस्मान्मूलं विमर्दार्धम्॥४२॥

चन्द्रबिम्बार्धहीनं तमोबिम्बार्धं यत्तस्य वर्गाद्विक्षेपवर्गं विशोध्य यच्छिष्टं तत् विमर्दार्धं विमर्दसाधनं भवति। तस्मात् षष्टिघ्नादर्केन्द्वोर्गत्यन्तरेण ...र्धकालो नाडिकात्मको भवतीत्यर्थः॥ ग्रस्तशेषमानयनमाह।

भा०:—चन्द्रबिम्बार्द्ध हीन तमोबिम्बार्द्ध को जो उसके वर्ग से विक्षेप वर्ग को घटाकर बचे, उस का मूल विमर्दार्द्ध होता है, उसी को विमर्द साधन कहते हैं। उस को ६० से गुणनकर सूर्य और चन्द्रमा की गति से घटानेपर शेष-फल विमर्दार्द्ध नाडिका होंगी ॥ ४२ ॥

तमसो विष्कम्भार्धं शशिविष्कम्भार्धवर्जितमपोह्य।
विक्षेपाद्यच्छेषं न गृह्यते तच्छशाङ्कस्य॥४३॥

चन्द्रबिम्बार्धं तमोबिम्बार्धाद्विशोध्य शिष्टं विक्षेपाद्विशोधयेत्। तत्र य-च्छेषं तत्तुल्यश्चन्द्रस्य भागस्तमसा न गृह्यते। शेषलिप्तासमानलिप्ता न गृह्यन्ते। ...॥ तात्कालिकग्रासपरिज्ञानमाह।

भा०:—चन्द्रबिम्बार्द्ध को तमोबिम्बार्द्ध से घटाकर शेषफल को विक्षेप से घटावे जो बचे उसके तुल्य चन्द्रमा का भाग अन्धकार से ग्रसित नहीं होता॥४३

विक्षेपवर्गसहितात् स्थित्यर्धादिष्टवर्जितान्मूलम्।
सम्पर्कार्धाच्छोध्यं शेषस्तात्कालिको ग्रासः॥४४॥

(विक्षेपकृतियुतादिष्टकालकोट्यूनस्थित्यर्धकोटेर्वर्गाद्यन्मूलं तत् सम्पर्कार्धं कृ-... विशोध्यम्। तत्र यच्छेषं तत् तात्कालिकग्रासप्रमाणं भवति॥ स्पर्शमोक्षादि-... ज्ञानमाह। *

भा०:—विक्षेप वर्ग जोड़ा हुआ, इष्टकाल कोटी से घटाकर स्थित्यर्द्ध कोटी के वर्ग से मूल कर उसे सम्पर्कार्द्ध वर्ग से घटावे—शेषफल तात्कालिक ग्रास होगा।४४

मध्याह्नात् क्रमगुणितो ऽक्षो दक्षिणतो ऽर्धविस्तरहृतो दिक्।
स्थित्यर्धाच्चार्केन्द्वोस्त्रिराशिसहितायनात् स्पर्शे॥४५॥

(मध्याह्नात् क्रमगुणितोऽक्षोऽर्धविस्तरहृतः। नतज्यया गुणिताक्षज्या त्रि-ज्यया भक्ता। तद्यापप्रमाणा दिग्भवति।) आक्षवलनं भवति। दक्षिणतो दि-... मध्याह्नात् (पूर्वभागे) दक्षिणं वलनं भवति। [दक्षिणतो दिक्] प्राङ्कपाले ... स्पर्शे दक्षिणवलनं भवतीत्यर्थः। पश्चात्कपाले उत्तरवलनम्। (मध्याह्ने) न भवति। चन्द्रस्य सर्वविपरीतं सर्वत्र भवति। एतदाक्षवलनं स्थित्यर्धात्। ...त्यर्धान्तरेण तन्मूलभूतो विक्षेप उच्यते सूर्यस्य स्फुटवलितं वलनं भवति। ... नतिर्यद्दिग्भवति स्पर्शे मोक्षे च। चन्द्रग्रहणे चन्द्रविक्षेपो वलनं भवति।

* पुस्तकद्वयेऽपि व्याख्यानं खण्डितम्। ...
...तम्। ...स्थित्यर्धेष्टकालप्रमाणतोऽनकाल। ...
...स्थित्यर्धेष्टकालादिष्टकाल० इति पुस्तकद्वये ...

तस्य विक्षेपव्यत्ययात् स्पर्शे मोक्षे च दिग्भवति। अर्केन्द्वोस्त्रिराशिसहिताय
अयनशब्देनापक्रम उच्यते । त्रिराशिसहितादर्काच्चन्द्राच्च निष्पन्नोऽपक्र
तयोरर्केन्द्वोर्वलनं भवति । स्पर्शो। इति ग्रहणे । इत्येवार्थतः। एतदायनंव
अस्य दिक्षु बिम्बस्य मुखेऽयनवद्भवति। चन्द्रस्य स्पर्शेऽयनवत् मोक्षेऽय
यात् । चन्द्राद्व्यत्ययेन सूर्यायनवलनं दिग्भवति । अक्षवलनायनचापयं
दिशोर्योगं कृत्वा भिन्नदिशोरन्तरं कृत्वा जीवामादाय सरूपकार्धेन निहत
ज्यया विभज्य लब्धे विक्षेपं संस्कुर्यात् । तत् स्फुटवलनं भवति । गृहीत
स्यान्वर्णानाह ।

भा०:—(मध्यान्ह से क्रम गुणित अक्षार्द्ध विस्तरहृत । नतज्या
गुणित अक्षज्या से त्रिज्या द्वारा भागदेकर भागफल चाप परिमाण
होगी) दक्षिण से मध्यान्ह में (पूर्वकाल में) दक्षिण वलन होता है ।
पूर्व कपाल में सूर्य के स्पर्श में दक्षिण वलन होता है । पश्चिम कपाल में
वलन होता है। चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण में सर्वत्र उलटा होत
स्थित्यर्द्ध शब्द से उस का मूलभूत विक्षेप कहा जाता और सु
स्फुट नति वलन होता है। और स्पर्श और मोक्ष में उसके
तुल्य होता है । चन्द्रग्रहण में चन्द्रविक्षेप वलन होता है ।
के विक्षेप के व्यतिक्रम (उलटा) से स्पर्श और मोक्ष में
होती है । अयन शब्द से अपक्रम कहा जाता है। तीन राशि सहित
और चन्द्रमा से निष्पन्न अपक्रम भी सूर्य और चन्द्रमा का वलन होता
ग्रहण में यह आयनवलन होता है । इस की दिशा तो बिम्ब के मुख मे
यन के तुल्य होगी । चन्द्र ग्रहण के स्पर्श में अयन तुल्य होगा । मोक्ष मे
यन के विपर्य्यय से चन्द्रमा से व्यतिक्रम द्वारा सूर्य आयन वलन होता
आक्ष वलन के दोनों चाप के तुल्य दिशा का योग कर और यदि भिन्न
अन्तर कर चाप लेकर सरूपकार्द्ध से गुणन कर त्रिज्या से भाग देवे, भाग
में विक्षेप संस्कार करे तो वह स्फुट वलन होगा ॥ ४५ ॥

प्रग्रहणान्ते धूम्रः खण्डग्रहणे शशी भवति कृष्णः।
सर्वग्रासे कपिलस्स कृष्णताम्रस्तमोमध्ये॥ ४६ ॥

प्रग्रहणे प्रारम्भे । अन्ते मोक्षे समाप्तौ च । चन्द्रो धूम्रो भवति । ख
हणेऽर्धबिम्बे गृहीतप्राये कृष्णवर्णः । सर्वग्रासे विमर्दे जाते सति कपिलः ।
ग्रहणेऽपि तमोमध्यं प्रविशति सति कृष्णताम्र (वर्णरागी भवति) । च
यदर्कस्यापि वर्णं इति प्रकाशिकायामुक्तम् ॥ सूर्यग्रहणेन्दुस्यभागमाह ।

द्वारा " अपन " होता है। पूर्वापर शङ्कुछाया में एवं दक्षिणोत्तर शङ्कु द्वारा तात्कालिक सूर्य्य सिद्ध होता है। एवं बहुत प्रकार से परीक्षा कि हुआ स्फुट सूर्य्य होता है ॥ ४८ ॥

सदसज्ज्ञानसमुद्रात् समुद्धृतं देवताप्रसादेन।
सज्ज्ञानोत्तमरत्नं मया निमग्नंस्वमतिनावा ॥ ४९ ॥

सदसज्ज्ञानरत्नवतो ज्योतिश्शास्त्राख्यसमुद्रात् स्वमतिनाया स्वमत्यार नावमारूढेन मया तन्मध्यं प्रविश्य तत्र निमग्नं सज्ज्ञानाख्यमुत्तमरत्नं देव यास्स्वयंभुवः प्रसादेन सम्यगुद्धृतम्। स्वयंभुवोद्दिष्टार्थप्रकाशनमेव मया प्र मित्यर्थः। संक्षिप्तत्वञ्चात्र सिध्यति ॥ अथोपसंहरति।

भा०:–ज्योतिष् शास्त्र रूपी समुद्र में अपनी बुद्धिरूपी नौका पर सवा होकर समुद्र में निमग्न हो ब्रह्मा की कृपा से सद्ज्ञानरूप रत्न को मैं ने (आ र्य्यभट) बाहर किया अर्थात् प्रकाशित किया ॥ ४९ ॥

आर्य्यभटीयं नाम्ना पूर्वं स्वायम्भुवं सदा सद्यत्।
सुकृतायुषोः प्रणाशं कुरुते प्रतिकञ्चुकं यो ऽस्य* ॥ ५० ॥

पूर्वमादिकाले यज्ज्योतिश्शास्त्रं वेदात्समुद्धृत्य ग्रन्थेन लोके प्रकाशित मासीत् सदा सर्वदा सद्भूतं तदेव मया नाम्नार्यभटीयमिति तन्त्रं प्रकाशितम् अस्य शास्त्रस्य यः प्रतिकञ्चुकं कुरुते। दोषोत्पादनेन तिरस्करणमित्यर्थः तस्य सुकृतायुषोः प्रणाशस्स्यात् ॥

परमादीश्वराख्येन कृतेयं भटदीपिका।
प्रदीप्यतां सदा ज्योतिश्शास्त्रज्ञानां हृदालये ॥

इति भटदीपिकायां गोलपादः।

इत्यार्यभटीयं समाप्तम्।

भा०:–आदि काल में जिस ज्योतिषशास्त्र को वेद से निकालकर प्रचार किया गया–उसी ज्योतिः शास्त्र को अर्थात् वैदिक ज्योतिष् शा मैं ने (आर्य्यभट) आर्य्यभटीय तन्त्र " नाम से प्रकाशित किया है। इस में जो कोई व्यक्ति मिथ्यादोष दिखला कर इस का तिरस्कार करेगा– सुकृत, पुण्य या यश और आयु का नाश होगा ॥ ५० ॥

आर्य्यभटीय ज्योतिषशास्त्र पूरा हुआ।

---

* प्रतिकञ्चुकं योऽस्य। इति पठनीयम्। दीपिकाव्याख्याया व्याकरणविरुद्

गौतमीय न्यायशास्त्र सभाष्यसानुवाद—मूल्य ३॥)

वेद, उपवेद और वेद के छः अङ्गों के रक्षार्थ-हमारे ऋषियों ने-छः " स्वरूप-छः दर्शन शास्त्र रचे हैं। इन दर्शनों में (अपने २ तरीके पर) क सत्य सनातन धर्म को युक्ति तथा प्रमाणों से बड़े २ नास्तिकों के पों का उत्तर देकर-हमारे वेदोक्त धर्म की रक्षा कियी गयी है। इन र्शनों में से सब से अधिक हमारे गौतम ऋषि ने चार्वाक, बौध, आर्हत, आदि मतों का अकाट्य उत्तर दिया है। इस दर्शन में एक बड़ी विल-ता है कि इस का ठीक २ समझ लेने पर, शास्त्रार्थ या बहस की रीति मालूम हो जाती है और चाहे कैसा भी प्रबल नास्तिक क्यों न हो इस के जानने वाले के सामने नहीं ठहर सकता। इस न्यायविद्या को ," मन्तिक़ या Logic कहते हैं। गौतम मुनि कृत ५३० सूत्रों पर वात्स्या-मुनिकृत संस्कृत भाष्य का-अत्युन सरलभाषानुवाद, स्थान २ पर उपयुक्त पणी दियी गयी है। और यह प्रति १३ शुद्ध प्रतियों से मिला कर यन्त शुद्ध छापी गयी है। इस में एक और विशेषता है कि इस की मका में आस्तिक और नास्तिक दर्शनों पर युक्ति और प्रमाणों द्वारा ार लिखा गया है और-छः दर्शनों का परस्पर विरोधाभास-के भ्रम को किया गयाहै। अर्थात् छः दर्शन का-मुख्य एक वेदोक्त सत्यधर्म की रक्षा मा-उद्देश्य है यह बात युक्ति, प्रमाण से सिद्ध कियी गयी है।

सामवेदीय-गोभिलगृह्यसूत्र सटीक सानुवाद २॥)

वेद के शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, और ज्योतिष इन छः ों में से-"कल्प" नामक अङ्ग वेद के हस्त स्वरूप हैं। अर्थात् वेद का जो ान उद्देश्य-श्रेयस्कर कर्मकाण्ड की प्रवृत्ति कराने में-है उसी का प्रतिपादक सूत्र है। चारों वेदों की भिन्न २ शाखा होने से,प्रत्येक शाखाओं के भिन्न २ सूत्र हैं। यह गोभिल गृह्यसूत्र-सामवेद की कौथुमी शाखा का-गोभिल-मपरीत-स्मार्तकर्म की पद्धति स्वरूप है। इस ग्रन्थ में प्रथम सूत्र । प्रत्येक सूत्र पर संस्कृतटीका, आवश्यकीय स्थानों में टिप्पणी और भाधानादि संस्कारों में जिन वेद मन्त्रों के पढ़ने की आवश्यकता पड़ती है, पूरे २ मन्त्र संस्कृत टीका में रक्खे गये हैं। और भूमिका में वेद, ाखा, सूत्र, गोत्र, प्रवर, आदि पर अत्यन्त उपयोगी विचार किया गया है। न्दर चिकने कागज पर नये टायप में अत्यन्त शुद्ध छपा है।

ूर्यसिद्धान्त भाषाटीका और बृहद्भूमिका सहित मू० २)

यह ग्रन्थ-सिद्धान्त ज्योतिष के उपलब्ध ग्रन्थों में सब प्राचीन और ान्य है। भारतवर्ष में ज्योतिष के अनुसार पञ्चाङ्ग आदि बनने तथा ियत आदि सिद्धान्त ज्योतिष के विषय सम्बन्धी विचार होने पर-इसी

ग्रन्थ का प्रामाण्य माना जाता है। आज तक इस अमूल्य ज्योतिष के ऊपर ऐसा अपूर्व विचार नहीं किया गया था, इस की भूमिका के १५० पृष्ठों में प्रायः संस्कृत ज्योतिष, अङ्गरेजी आदि ज्योतिष, वेद, ब्राह्मणादि पुस्तकों से भारतवर्षीय ज्योतिषशास्त्र का गौरव सिद्ध किया गया है। केवल इस एक ही पुस्तक के पढ़ने से बिना गुरु प्रायः ज्योतिष के विषयों का ज्ञाता हो सकता है।

पिङ्गलसूत्र सटीक सानुवाद। मूल्य १॥)

वेदार्थ समझने के लिये-छन्दोग्रन्थ की भी आवश्यकता है। स्थान २ में छन्दो विशेष का विधान है, इसी कारण गायत्री उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, इन सात छन्दों का वर्णन तथा मगण, यगण आदि छन्द सम्बन्धी वैदिक तथा लौकिक छन्दों का वर्णन है। बिना छन्द ज्ञान के वेद पढ़ना दोष लिखा है तथा बिना छन्द ज्ञान के मन्त्रों का अर्थ भी ठीक २ समझ में नहीं आ सकता, क्योंकि बिना षडङ्ग के वेद का तात्पर्य समझना आहोपुरुषिकामात्र है। यद्यपि श्रुतबोध, वृत्त रत्नाकर आदि भी छन्दोग्रन्थ हैं परन्तु-उन में वैदिक छन्दों का कुछ भी वर्णन नहीं है अतएव हम ने बड़े परिश्रम से-वेद के छः अङ्गों में से पिङ्गलकृत छन्दसूत्र पर हलायुधकृत वृत्ति सहित का अति उपयोगी सरल भाषानुवाद किया है। उत्तम चिकने कागज पर अत्यन्त शुद्ध छपा है।

नीचे लिखे पुस्तक शीघ्र छपेंगे।

१-सिद्धान्तशिरोमणि—पं० भास्कराचार्य कृत ज्योतिष का ग्रन्थ (गोलाध्याय) संस्कृत टीका और भाषानुवाद एवं उपयुक्त-चित्र सहित मू०२)

२-सचित्र भारतवर्षीय प्राचीन भूगोल।

नाम ही से समझ जाइये-वाल्मीकीय तथा महाभारत आदि के समय के देशों की स्थिति का—चित्र, रावण, वालि, तथा भगवान् रामचन्द्र जी के राज्य के भिन्न २ रंग दे कर नक्शा छापा जावेगा २॥)

३-सर्वदर्शनसंग्रह-माध्वाचार्यकृत्—जिस में १६ दर्शन हैं और जिस में आस्तिक नास्तिक, दर्शनों का सिद्धान्त लिखा है। संस्कृत और भाषानुवाद सहित और भूमिका में सब दर्शनों पर गूढ़ विचार तथा-अङ्गरेजी में भी प्रत्येक दर्शन का खुलासा लिखा गया है मूल्य —३॥)

इस में नीचे लिखे दर्शन हैं; इन का अलग २ दाम इस प्रकार होगा। १ चार्वाक ≈), बौद्ध ≈), आर्हत ।), रामानुज ।), पूर्णप्रज्ञ ≈), पाशुपत =), शैव-दर्शन ≈), प्रत्यभिज्ञान =), रसेश्वर =), न्याय =), वैशेषिक =), मीमांसा =), पाणिनीय =), सांख्य =), पातञ्जल ।) और शाङ्करदर्शन ॥) है।

पता-उदयनारायणसिंह—शास्त्रप्रकाश कार्यालय

मथुरापुर, चित्तूपुर, मुजफ्फरपुर।